मरणभोज

लेखक:—

पं० परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ-सूरत।

प्रकाशक:—

सिंघई मूलचन्द जैन मुनीम-ललितपुर (झांसी)

तथा

शा० साकेरचन्द मगनलाल सरैया-सूरत।

[स्व० सिंघई मौजीलालजी जैन वैद्य ललितपुर और स्व० शा० मगनलाल उत्तमचन्दजी सरैया सूरतकी स्मृतिमें "जैनमित्र" और "वीर" के ग्राहकोंको भेट।]

विषय सूची ।

आभार।

मैंने अपने पूज्य पिताजी श्री० सिंघई मौजीलालजीके स्वर्गवास होनेपर मरणभोज नहीं किया, कारण कि मैं मरणभोजको धर्म एवं समाजका घातक एक भयंकर शाप समझता हूं। किन्तु मैंने यह निश्चय किया था कि पिताजीके स्मरणार्थ एक ऐसी पुस्तक लिखी जाय जो 'मरणभोज' के विरोधमें अच्छा आन्दोलन कर सके। इसके लिये मैंने तथा मेरे पूज्य बडे भाई सिंघई मूलचंदजीने १००) के दानका संकल्प किया था। उसमेंसे २०) के रजत चित्र (भगवान पार्श्वनाथस्वामी और भ० महावीर स्वामीके) ललितपुर और महरौनीके मंदिरोंमें विराजमान किये थे। ८०) इस पुस्तकमें लगा दिये हैं। इसके अतिरिक्त २५) के मूल्यकी ४० प्रतियां चारुदत्त चरित्रकी भी वितरण की हैं।

हमारे मित्र श्री० साकेरचन्द मगनलाल सरैया-सूरतने भी अपने स्व० पिता श्री० मगनलाल उत्तमचन्द सरैयाके स्मरणार्थ इसमें ८०) प्रदान किये हैं। और हमारे मित्र पं० मंगलप्रसादजी शास्त्री ललितपुरने भी अपनी स्व० भावी (धर्मपत्नी सि० रामप्रसादजी) के स्मरणार्थ २५) प्रदान किये हैं। इस प्रकार यह पुस्तक प्रगट होकर 'जैनमित्र' और 'वीर' के ग्राहकोंको भेट दीजारही है। इसलिये मैं अपने आर्थिक सहयोग देनेवाले इन मित्रोंका आभारी हूं।

साथ ही मैं उन सभी सज्जनोंका भी आभारी हूं जिनने इस पुस्तकके लिये सच्ची घटनायें तथा अपनी सम्मतियां और कवितायें आदि भेजकर मेरे इस कार्यमें सहयोग दिया है।

इस पुस्तकके विवेकी एवं उत्साही पाठकोंसे मेरा साग्रह निवेदन है कि आप इसे पढ़कर जनतामें 'मरणभोज' विरोधी विचारोंको फैलायें और ऐसा प्रयत्न करें जिससे थोड़े ही समयमें इस भयंकर प्रथाका नाश होजाय। मरणभोजकी प्रथा जैन समाजका एक कलंक है। जो भाई बहिन इस पुस्तककी सहायता लेकर इस कलंकको मिटानेका प्रयत्न करेंगे उनका भी मैं आभारी होऊंगा।

चन्दावाडी-सूरत
ता० १९-१२-३७.

निवेदकः—
परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ।
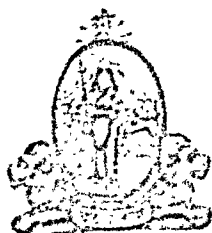
परिचय ।

(१)

स्वर्गीय श्रीमान् सिंघई मौजीलालजी जैन वैद्य-का जन्म यू० पी० के झाँसी जिलान्तर्गत महरौनी नगरमें आश्विन विक्रम संवत् १९२५ में हुआ था। आपके पिताजीका नाम श्री० सिंघई दयाचंद्रजी था।

आपके तीन पुत्र हुए। आपने लघु पुत्र पं० परमेष्ठीदासजीके ज़हन, प्रतिभा, उत्साह और कर्मठतासे उन्होंने इस जात्युत्थान और धर्म प्रभावनाकी ख़ातिर मर-मिट-जाने-के-अरमान-वालेको पहिचान लिया। चुनांचे, आपने बड़े लड़केकी मुलाजमत ललितपुरमें होनेके कारण जब ये महरौनीसे ललितपुर सकुटुम्ब तशरीफ़ ले आए, और वहां व्यापारिक असफलतासे उत्पन्न आर्थिक सङ्कटके बावजूद हर हालतमें परमेष्ठीदासजीको पढ़ाना जारी रखा, जिसका मुबारिक नतीजा यह निकला कि आज जैन कौम अपने इस फ़रज़न्द पर नाज़ करती है। जैन समाजके इस Whip ने हमेशा धर्मके दायरेमें रहकर प्रेस और प्लेटफार्मसे समयोचित क्रांतिके नारे बुलन्द किये। जिनवाणी माताके दामनको "चर्चासागर" जैसी नापाकीज़गीसे पङ्किल होनेसे बचानेमें, 'दस्साओंको पूजाधिकार' दिलानेमें, जैनागम-सम्मत 'विजातीय-विवाह' का प्रोपेगेण्डा करनेमें, 'जैनधर्मकी उदारता' का दिग्दर्शन करानेमें, उन्होंने जिस शक्तिभर संलग्नताके साथ काम किया है उसे क्या कभी सहृदय-विचारक जैन समाज भूल सकेगी !

पर इन पं० परमेष्ठीदासजीमें धर्म-सेवाकी यह स्पिरिट फूँकनेवाले थे महरौनीके सुविख्यात सिंघई वंशके चमकते हुए सितारे श्री० मौजीलालजी उर्फ "दाऊजू" ही। आपकी आत्मा धर्म-भावनाओंसे निरन्तर सरशार रहती, प्रतिदिन दर्शन, स्वाध्यायादि धर्म कार्य करते। खुद समाज-सुधारक तो थे ही। वे अपने लघु पुत्र पं० परमेष्ठीदासजीके तमाम आन्दोलनों, विचारों, लेक्चरों, लेखों वगैरह प्रवृत्तियोंसे न सिर्फ सहमत रहते बल्कि प्रोत्साहन भी देते रहते।

परोपकारी सिंघईजी सफल वैद्य थे। औषधियाँ बनाते और सत्पात्रोंको मुफ्त तक़सीम करते। ज़िंदगीके आखिरी रोज़ भी एक मरीज़को देखने गये, औषधि देकर लौटे, और उसी दिन आश्विन वदी १३ वि० सं० १९९३ (ता० १५-१०-३६) की रात्रिको निराकुलतापूर्वक स्वर्गवासी होगये।

संवत् १९८८ में आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री० वंशीधरजीका मात्र ३२ वर्षकी आयुमें स्वर्गवास होगया। लेकिन आपने साहसपूर्वक उनका "मरणभोज" करनेसे साफ इन्कार कर दिया।

आपके द्वितीय पुत्र सिं० मूलचन्द्रजी जैन ललितपुरकी एक सुप्रसिद्ध पेढ़ीपर कार्य करते हैं। और लघुपुत्र श्री० पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ सूरतमें जैनमित्र कार्यालयके मैनेजर हैं। और "वीर" का संपादन भी करते हैं।

सन्तोषकी बात है कि सिंघईजीका 'मरणभोज' न करके उनके स्मरणार्थ यह पुस्तक प्रगट की जारही है। मेरी भावना है कि यह किताब साहस वीरोंके हृदयमें "मरणभोज" की बर्बर प्रथाके खिलाफ

(७)

जोशकी ऐसी ज्वाला भड़काये जो रूढ़िभक्तों और दकियानूसोंके बुझाये न बुझे।

(२)

स्वर्गीय श्री० **मगनलाल उत्तमचन्दजी सरैया**का जन्म सूरतमें विक्रम सं० १९४८ में हुआ था। आप नृसिंहपुरा दि० जैन थे। आपने गुजरातीका सामान्य ज्ञान प्राप्त करके सरैया (गंधीगिरी) का व्यवसाय शुरू किया। और उसमें अच्छी कामियाबी हासिल की। आपको पुस्तकें लिखने और स्वाध्याय करनेका बड़ा शौक था। आपका स्वर्गवास मार्गशीर्ष शुक्ला १० सं० १९७४ में असमयमें ही होगया था।

आपके दो पुत्रियां और एक पुत्र हुआ। उनमेंसे वर्तमानमें पुत्र श्री० साकेरचन्द मगनलाल सरैया हैं, जो अत्यन्त उत्साही, व्यवसायी युवक हैं। आपने देशसेवा करते हुए जेलयात्रा भी की है। एक सच्चे सुधारकके मानिन्द आपने अपना अन्तर्जातीय (दि० जैन मेवाड़ा जातिमें) विवाह किया है। आपने अपने पिताजीके स्मरणार्थ इस पुस्तकके प्रकाशनमें ८०) प्रदान किये हैं।

(३)

श्री० पं० मंगलप्रसादजी जैन शास्त्री ललितपुर सुधारक युवक विद्वान हैं। आपके बड़े भाई श्री० रामप्रसादजी सिंघईकी धर्मपत्नीका कुछ ही समय पूर्व असमयमें ही स्वर्गवास हो गया है। आपने उनका मरणभोज नहीं किया और इस उपयोगी पुस्तकके प्रकाशनार्थ २५) प्रदान किये हैं। निवेदक—

नारायणप्रसाद जैन B. Sc.

समर्पण !

पूज्य पिताजी !

आपके स्वर्गवासके बाद "मरणभोज" जैसे रूढ़िवाद और पाखण्डोंकी विशाल सेनाने मुझ पर भयंकर आक्रमण किया। किन्तु आपके आत्मोत्थान एवं समाजसुधारके आदर्शोंसे ओत-प्रोत यह सिपाही इस 'महानाश' के आगे तिलभर भी झुकनेवाला नहीं था। और अन्तमें यही हुआ भी। यह पुस्तकनिर्माण भी इसीका शुभ फल है।

पर मूलरूपमें आप ही तो इसके प्रेरक हैं, अतः यह तुच्छ कृति आपकी स्मृति स्वरूप आपको ही सादर तथा श्रद्धापूर्वक समर्पित है।

—परमेष्ठी।

स्व० सिंघई मौजीलालजी जैन वैद्य ललितपुर।

जन्म-सं० १९६५ आश्विन। स्वर्गवास-सं० १९९१ आश्विन।

"जैनविजय" प्रेस—सूरत।

श्रीवीतरागाय नमः ।

मरणभोज ।

जैनागमविरुद्धोयं मृत्युभोजो निवार्यताम् ।
रूढिरेषोऽतिघोराऽस्ति दशमप्राणनाशिनी ॥ १ ॥
गृहहीनाः महाक्लेशाः असंख्या विधवा यया ।
संजाताः स महाव्याधिः शीघ्रमेवापसार्यताम् ॥ २ ॥
अमंगलो मृत्युभोजः ओजस्तेजोऽपहारकः ।
आधिव्याधिसमापूर्णः दुरंतोदन्तसंततिः ॥ ३ ॥
शास्त्रानुमोदितो नैव नव युक्तिसमर्थितः ।
मृत्युभोजो वहिष्कार्यः कथं श्रेयस्करो भवेत् ॥ ४ ॥
सम्यग्दृष्टिपरित्यक्तं मिथ्यादृष्टिसमर्थितं ।
पुष्णंति ये मृत्युभोजं ते नरा न नराः खराः ॥ ५ ॥

— चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ ।

मरणभोजकी उत्पत्ति ।

मरणभोजका अर्थ किसी मृत व्यक्तिके नामसे या उसके निमित्तसे जाति, समाज या किसी समूहको भोजन कराना है। इसे नुक्ता, बारमा, काज या मौसर भी कहते हैं। यह अमानुषिक प्रथा कब, कैसे, किसके द्वारा और क्योंकर उत्पन्न हुई यह न तो मैं स्वयं जानता हूं और न सौ विद्वानोंको पत्र देनेपर उनसे ही कोई सन्तोष-

कारक उत्तर कहींसे मिला है। इसलिये मैं मानता हूं कि जैसे चोरी, व्यभिचार, हत्या या अन्य ऐसे ही अत्याचारोंका कोई इतिहास नहीं, इसी प्रकार मरणभोजकी अमानुषिक प्रथा का भी इतिहास नहीं मिलता।

हां, आत्मजागृति कार्यालय जैन गुरुकुल-व्यावरसे प्रगट हुई पुस्तक 'सुखी कैसे बनें?' में किरियावर (मरणभोज) की उत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है कि "किसी सेठके पुत्रने पिताकी मृत्युके रंजसे भोजन छोड़ दिया, तो चार कुटुंबियोंने उसके घरपर भोजनकी थाली ले सत्याग्रह किया कि आप खाओ तो हम खायेंगे। इससे सादा भोजन तो शुरू हुआ किन्तु वह सेठका पुत्र मीठा भोजन नहीं खाता था, उसे शुरू करानेके लिये पुनः मिठाई बनवाकर थाली परोसकर बैठ गये और मीठा खाना शुरू कराया। इससे कई लोग पितृभक्तिकी प्रशंसा करने लगे। यह देख दूसरोंने भी नकल करना चाही और चारकी जगह दस कुटुम्बी आये, फिर तीसरेने २५को बुलाया, फिर सैकड़ों और अब तो हजारोंको बुलाकर मरणभोज होने लगे।"

जो भी हो, मरणभोजकी उत्पत्ति चाहे इस तरह हुई हो या किसी दूसरी तरह, किन्तु यह है बहुत ही भयानक। ब्राह्मणोंने तो इसे धर्मका महान अंग बताया और यह गरीब अमीर सभी हिन्दुओंमें प्रचलित होगई। जिस गरीबने जिन्दगीभर कभी मिष्टान्न न खाया होगा वह भी अपने घरके लोगोंकी मृत्यु होनेपर जातिके लोगोंको मिष्टान्न भोजन कराता है। कारण यह है कि उसे ब्राह्मण पंडितों द्वारा यह विश्वास दिलाया जाता है कि मरणभोज करनेपर ही मृतात्माको शान्ति एवं सद्गति मिलेगी। बिना मरणभोजके मृता-

त्मा श्मशानकी राखमें ही लोटता रहता है। उसे राखसे निकालकर मुक्तिमें पहुंचानेका एक मात्र उपाय मरणभोज है। यह विश्वास अशिक्षितोंमें ही नहीं किन्तु शिक्षित हिन्दू घरानोंमें भी बहुतायतसे पाया जाता है।

किन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि सत्यकी उपासक, कर्मोंके बन्ध मोक्षकी व्यवस्था जाननेवाली तथा जन्ममरणसे सिद्धान्तसे परिचित जैन समाजमें भी अनेक जगह यही मूढ़तापूर्ण विश्वास छाया हुआ है। जबकि जैन शास्त्र कहते हैं कि मरण होनेके बाद क्षणभरसे पहले मृतात्मा दूसरी योनिमें पहुंच जाता है और उसपर किसी अन्यके किये हुये कार्योंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो भी अनेक मूढ़ जैन लोग जैनेतरोंकी मान्यतानुसार मरणभोजसे शुभ गतिमें जाने या तरनेकी शक्ति मानते हैं।

मैं यहांपर मरणभोज सम्बन्धी हिन्दू शास्त्रोंके सारहीन कथनकी समालोचना नहीं करना चाहता, किन्तु मुझे तो यहां मात्र इतना ही कहना है कि कमसे कम जैनाचारकी दृष्टिसे तो मरणभोज करना घोर मिथ्यात्वका कार्य है। इसे जो आवश्यक कार्य मानकर करता है वह सच्चा जैनी नहीं है। हमारे एक भी जैन आर्ष शास्त्रमें मरणभोजका कोई विधि-विधान नहीं है। जैनाचार्योंके द्वारा निर्माण किये गये श्रावकाचारोंमें जैन गृहस्थकी साधारणसे साधारण क्रियाओंका कथन किया गया है, किन्तु किसी भी आचारशास्त्रमें मरणभोजका विधान नहीं है। फिर भी मूढ़तावश जैन लोगोंमें यह प्रथा चालू है, यह खेदकी बात है।

जैन समाजमें दो क्रियाकोश प्रचलित हैं, एक स्व० पंडितप्रवर दौलतरामजीका और दूसरा पं० किशनसिंहजीका । इनमेंसे पं० दौलतरामजीका क्रियाकोश अधिक प्रमाणीक माना जाता है। उसमें सूतकपातककी विधिका वर्णन करके भी कहीं मरणभोजका कोई विधान नहीं किया है। एक बात यह भी है कि जैन कथाग्रन्थोंमें महापुरुषोंका विस्तृत जीवनपरिचय दिया गया है। उनमें उनके जीवनमरणकी छोटीसे छोटी घटनाओं एवं क्रियाओंका उल्लेख है। किन्तु क्या कोई बतला सकता है कि किसी महापुरुषने अपने पूर्वजोंका या किसी महापुरुषका उनके कुटुम्बियोंने मरणभोज किया था ? सच बात तो यह है कि मरणभोज न तो जैन शास्त्रानुकूल है और न इसकी कोई आवश्यक्ता ही है ।

मैंने मरणभोज सम्बंधी ५ प्रश्नोंके १०० कार्ड छपाकर जैन समाजके १०० अग्रगण्य विद्वानोंके पास भेजे थे, उनमें एक प्रश्न यह भी था कि क्या मरणभोज जैन शास्त्र और जैनाचारकी दृष्टिसे उचित है ? किन्तु कुछ सज्जनोंने निषेधात्मक उत्तर ही दिये, मगर अन्य कट्टर रूढ़िचुस्त पण्डितोंको इसका यथार्थ उत्तर देनेका साहस ही नहीं हुआ। हो भी कहांसे ? वे किसी भी तरह मरणभोजको शास्त्रानुकूल सिद्ध कर ही नहीं सकते ।

स्थितिपालक दलके नेता पं० मक्खनलालजी शास्त्रीके सम्पादकत्वमें निकलनेवाले जैनगजट वर्ष ४२, अंक ७ (ता० २८-१२-३६) में मा० ज्ञानचंदजी जैनने एक विज्ञप्ति छपाई थी कि "मरणभोज शास्त्रसम्मत है, इसपर विद्वानोंसे प्रार्थना है कि वे अपना

मत सप्रमाण गजटमें प्रगट करें, ताकि शंका निवारण हो।" किन्तु इस आवश्यक प्रश्नका उत्तर देनेका साहस न तो गजटके सम्पादकजी ही कर सके और न कोई दूसरा। इसका भी कारण स्पष्ट है कि कहीं भी मरणभोजकी शास्त्रसम्मतता नहीं मिल सकती।

तात्पर्य यह है कि मरणभोजका विधान न तो जैन शास्त्रोंमें है और न जैनाचारकी दृष्टिसे ही यह कार्य उचित है। जैनोंमें तो इसका प्रचार मात्र अपने पड़ौसी हिन्दुओंसे हुआ है, उन्हींका यह अनुकरण है। यही कारण है कि आजसे सौ–पचास वर्ष पूर्व प्रायः सारी जैन समाजमें मरणभोजके साथही उसकी आगे पीछेकी तमाम क्रियायें हिन्दू क्रियाओंके समान ही कीजाती थीं, जिनका निषेध करते हुये पं० किशनसिंहजीने अपने क्रियाकोषमें लिखा है कि:—

दग्ध क्रिया पाछें परिवार, पाणी देय सबै तिहिवार।
दिन तीजेसो तीयो करैं, भात सराई मसाण हूँ धरैं ॥ ५७ ॥
च्यांदी सात तवा परि डारि, चंदन टिपकी पै नरनारि।
पाणी दे पाथर पडकाय, जिनदंसण करिकैं घरि आय ॥ ५८ ॥
सब परियण ज़ीमत तिहिंवार, वांवां करते गांस निकार।
सांज लगै तिनि ढांक दिपाय, गाय बछा कुं देय पुवाय ॥ ५९ ॥
ए सब क्रिया जैन मत मांहि, निंद सहल भापै सक नांहि।

इस प्रकार आगे भी तमाम मिथ्या क्रियाओंका वर्णन करके जैनोंको उनके त्यागनेका उपदेश दिया है। और स्पष्ट लिखा है कि एक दो या तीन समयमें तो जीव अन्य भवमें पहुंच जाता है, फिर व्यर्थ ही क्यों आडम्बर रचते हो? उसके निमित्तसे ग्रास (अठूता–पिण्ड) निकालना, पानी देना आदि सब मिथ्यात्व है। कारण कि

मृतात्मा फिर उसके उपभोगके लिये न तो वापिस आता है और न राखमें पड़ा रहता है, न मरण स्थानपर मंडराता रहता है। इसलिये तमाम मिथ्या क्रियाओंका त्याग करो। ५९ में छन्दमें परिजनोंके जीमनेकी रूढ़ि बताकर उसे भी निंद्य कहा है।

किन्तु हम आज देखते हैं कि जैनोंमें प्रायः तमाम मिथ्या क्रियायें प्रचलित हैं। मरणभोजके लिये शक्ति न होनेपर भी अनाथ विधवाओंके गहने बेचे जाते हैं, उनके मकान बेच दिये जाते हैं, सारी सम्पत्ति स्वाहा करदी जाती है और नुक्ता किया जाता है। ऐसा न करनेपर उसकी निन्दा होती है और कहीं कहीं तो मरणभोज न करनेवालोंको जातिबहिष्कृत भी कर दिया जाता है। यह सब बातें आपको आगे करुणाजनक घटनाओंके प्रकरणमें देखनेको मिलेंगी।

मरणभोजकी भयंकरता।

मरणभोजकी राक्षसी प्रथाके कारण अनेक विधवायें बर्बाद होगईं, अनेक बच्चे दाने दानेको तरस रहे हैं, अनेक ऊंचे घर कर्ज करके मिट्टीमें मिल गये हैं। इस भयंकर प्रथाकी पुष्टिके लिये कई गृहस्थोंको घर जायदाद बेचना पड़ी, गहने वर्तन बेचना पड़े और अपना जीवनतक बेच देना पड़ा, किन्तु निर्दयी पंचोंने जीवन लेकर भी जीवन नहीं छोड़ा।

निर्दयताके साथ ही साथ यह कितनी भयंकर असभ्यता है कि माता मरे या पिता, भाई मरे या भौजाई, काका मरे या काकी,

पुत्र मरे या पुत्री, पति मरे या पत्नी किन्तु तत्काल ही मोदक उड़ानेकी तैयारी होने लगती है । इसी विषयमें एक सज्जनने लिखा है कि "मरणभोजभोजियोंने सहानुभूतिको संखिया दे दिया, कृतज्ञताको कौड़ीके मोल बेच दिया, समवेदनाकी भद्रताको भट्टीमें झोंक दिया, मुर्देके मालपर गीध और कुत्तोंकी तरह टूट पड़े, खूनसे सने सीरेको हड़पने लगे, लोहूभरी लपसी डकार गये, रक्तसे लथपथ रबड़ीको सबोड़ गये, कराहते हुये आत्मीयोंके क्रन्दनको सुननेके लिये कान फोड़, आगापीछा भूल चटोरी जिह्वाके चाकर बन गये।" क्या यही दया और अहिंसाका स्वरूप है? क्या यही आर्य सभ्यताकी निशानी है? भोजनभक्त नरपिशाचो! तनिक अपनी हियेकी आंखें खोलो और इस पाशवतापर विचार करो!

जरा मरणभोजके दृश्यको तो एकवार देखिये:—एक तरफ कफन खरीदा जारहा है तो दूसरी ओर मरणभोजकी तिथि तय की जारही है, इधर जनाजा निकल रहा है तो उधर पकवान उड़ानेकी प्रतीक्षा होरही है, इधर चितापर मुर्दा जल रहा है तो उधर निमंत्रणकी फहरिश्त बनाई जारही है, इधर विधवा सिर और छाती कूट कर हाय हाय कर रही है तो उधर लड्डुओंकी तैयारी होरही है, इधर पितृहीन बालक आहें भर रहे हैं तो उधर पंच लोग नुक्तेकी चर्चामें तल्लीन हैं, इधर घरके लोग आंसू बहा रहे हैं और जोर जोरसे चिल्ला रहे हैं तो उधर हृदयहीन स्त्री पुरुष लड्डू गटक रहे हैं। यह कैसा दयनीय एवं निष्ठुरतापूर्ण कृत्य है, जिसे देखकर दया तो किसी अन्धेरे कौनेमें खड़ी हुई रोती होगी।

सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह है कि मरणभोजकी करुणताको जानते हुये भी आज कितने ही भोजनभट्ट, पेटार्थू और धर्मके ठेकेदार बननेवाले हृदयहीन व्यक्ति इस निर्दयतापूर्ण मरण-भोजकी पुष्टि करते हैं। उनके पास न तो कोई धर्मशास्त्रोंका प्रमाण है और न कोई बुद्धिगम्य तर्क। फिर भी वे अपने हठवादको पुष्ट करते रहते हैं। यदि उनके पास कोई प्रमाण है भी तो एक मात्र त्रिवर्णाचार हो सकता है। क्या कोई मरणभोज समर्थक विद्वान किसी आर्षग्रन्थमें मरणभोजका प्रमाण बता सकते हैं?

जिस त्रिवर्णाचारका प्रमाण दिया जा सकता है वह ग्रन्थ शिथिलाचारका पोषक है, उसमें योनिपूजा, पीपलपूजा, श्राद्ध, तर्पण और ऐसी ही अनेक मिथ्यात्व पोषक बातोंका विधान है, जो जैनत्व-सम्यक्त्वको नष्ट करनेवाली हैं। उसमें तो तीसरे दिनसे लगाकर बारहवें दिन तक बराबर भोजन करानेका विधान किया गया है और हिन्दू शास्त्रोंके आधारसे श्राद्ध, तर्पण, पिण्डदानका पूरा वर्णन करके उन्हें जैनोंके लिये विधेय बताया है। तात्पर्य यह है कि भट्टारक सोमसेनके त्रिवर्णाचारमें जैनियोंका जैनत्व नष्ट करनेवाले अनेक विधि विधान भरे पड़े हैं। उसीमें मरणभोज भी एक है। इसके अतिरिक्त कोई भी प्राचीन या अर्वाचीन जैनशास्त्र मरणभोजका समर्थन नहीं करता।

प्रत्युत पण्डितप्रवर सदासुखदासजीने रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक २२ की टीकामें मरणभोज, श्राद्ध, तर्पण आदिको लोकमूढ़ता बताया है।

त्रिवर्णाचार तथा ब्रह्मसूरि कृत प्रतिष्ठातिलकमें एक ही तरहके अक्षरशः नकल किये हुए कुछ श्लोक ऐसे भी हैं जिनका तात्पर्य यह है कि यदि दुष्ट तिथि, दुष्ट नक्षत्र या दुष्ट वारमें अथवा दुर्भिक्ष, शस्त्र, अग्निपात या जलपात आदिसे मरण हो तो कुटुंबीजनोंको प्रायश्चित्त (तद्दोषपरिहारार्थ) के हेतुसे अन्नदानादि देना चाहिये। इससे यह ज्ञात होता है कि पहले मरणभोजकी प्रथा प्रायश्चित्तके रूपमें प्रारम्भ हुई थी। उस समय मात्र पांच युगलोंको अन्नदान देनेकी **(पञ्चानां मिथुनानां तु अन्नदानं)** विधि थी। फिर भी यही धीरे धीरे बढ़कर सैकड़ों हजारोंको लड्डू खिलानेके रूपमें परिणत होगई। और अब तो सभी प्रकारके मरणोपलक्षमें बृहत् भोज किया जाता है तथा उसमें हजारों रुपया खर्च किये जाते हैं। जबतक यह प्रथा बन्द न होगी तबतक न तो समाजकी दयनीय दशा सुधर सकती है और न समाज अमानुषिकताके कलंकसे ही मुक्त हो सकती है।

शास्त्रीय शुद्धि।

हिन्दू स्मृतियोंकी नकल करके सोमसेन भट्टारकने मरणशुद्धिके लिये भोजन कराना आवश्यक बताया है, तब आचार्य गुरुदासने प्रायश्चित्तसंग्रह चूलिकामें लिखा है कि:—

> जलानलप्रवेशेन भृगुपाताच्छिशावपि।
> बालसन्यासतः प्रेते सद्यः शौचं गृहिव्रते ॥१५२॥

अर्थात्—जलमें डूबने, अग्निमें जलने, पर्वतसे गिरने, बाल-

कक मरने या बाल (मिथ्यादृष्टि) सन्यासमे मरने पर तत्काल ही शुद्धि होजाती है ।

किन्तु इस आर्षवाक्यके विरुद्ध सोमसेन त्रिवर्णाचारमें गौदानादि तथा भोजन करानेपर शुद्धि मानी गई है । ऐसी स्थितिमें प्रायश्चित्त समुच्चय ग्रंथको ही प्रमाण मानना बुद्धिमानी है । कारण कि " सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत् ।" अर्थात् सामान्य शास्त्रकी अपेक्षा विशेष अधिक प्रामाणिक होता है । इसलिये शिथिलाचारी मिथ्याप्रचारी भट्टारक सोमसेनकृत त्रिवर्णाचारकी अपेक्षा प्रायश्चित्त समुच्चय अधिक प्रामाणिक शास्त्र है । और फिर त्रिवर्णाचार तो कोई शास्त्र भी नहीं है ।

दूसरी बात यह है कि हम पहले बता चुके हैं कि जलपातादिसे मरनेपर तो तत्काल ही शुद्धि होजाती है और वैसे सामान्य मरण होनेपर अमुक दिन बाद स्वयं शुद्धि होजाती है । यथा—

ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रा दिनैः शुद्ध्यन्ति पंचभिः ।
दश द्वादशभिः पक्षाद्यथासंख्यप्रयोगतः ॥ १५३ ॥
—[illegible] संग्रह चूलिका ।

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र किसी स्वजनके मर जानेपर क्रमशः पांच, दस, बारह और पन्द्रह दिनके बीतनेपर स्वयमेव शुद्ध होजाते हैं । इससे यह स्पष्ट सिद्ध होजाता है कि जैनोंकी पातक शुद्धि १२ दिन बीत जानेपर स्वतः होजाती है । इसलिये मरणभोजसे शुद्धि होना मानना एक मात्र मिथ्यात्व है । मरणके बादकी पातकशुद्धि तो कालशुद्धि है ।

इसलिये अमुक काल व्यतीत होजानेपर स्वयमेव शुद्धि होजाती है। यदि इसके लिये मरणभोज करना भी आवश्यक होता तो आचार्य गुरुदास उसका भी उल्लेख अवश्य करते। किन्तु उनने ऐसा न करके मात्र कालशुद्धि ही बताई है। व्यवहारमें भी यही देखा जाता है कि तेरहवें दिन (कहीं कहींपर १० दिनमें ही) शुद्धि होजाती है, और विना मरणभोज किये ही लोग देवदर्शन तथा पूजादि कार्य करने लगते हैं। इससे सिद्ध होगया कि मरणभोज शुद्धिके लिये भी अनावश्यक है!

मूलाचारके समयसाराधिकारमें भी सूतकका उल्लेख है और उसकी शुद्धिके लिये लौकिक ग्लानिके त्याग करनेका उपदेश दिया है। यथाः—

"लोकव्यवहारशोधनार्थं सूतकादिनिवारणाय लौकिकीजुगुप्सा परिहरणीया।"

अर्थात्-लोकव्यवहारकी शुद्धिके लिये सूतकादिके निवारणके लिये लौकिक ग्लानिका त्याग करना चाहिये। इसीको स्पष्ट करते हुये विद्वज्जनबोधकमें कहा है कि "लोकव्यवहारमें ग्लानि नहीं उपजै तैसैं प्रवर्तन करना, याहीतैं लोकमैं सूतकादिके त्याज्य दिन जे हैं तिनमैं स्वाध्याय पूजन नहीं करते हैं, सो भी धर्मका ही विनय निमित्त ग्लानिरूप दिनका त्याग है।"

इससे भी स्पष्ट सिद्ध है कि मात्र ग्लानिका त्याग कर बंद की हुई स्वाध्यायादि धार्मिक क्रियाओंका प्रारम्भ कर देना ही लौकिक शुद्धि है। इसीसे सूतक-पातककी अशुचिता मिटकर ग्लानि मिट-

जाती है। यहांपर " सूतकादिके त्याज्य दिन जे हैं " कहकर कालशुद्धि पर ही भार दिया है। इसके लिये मरणभोज आदिकी आवश्यक्ता नहीं है। अन्यथा उसका उल्लेख भी यहां अवश्य किया जाता। इससे भी सिद्ध है कि मरणभोजका न तो शास्त्रीय विधान है और न उसकी कोई आवश्यक्ता ही है। फिर भी जो मरणभोज करते हैं वे अज्ञान, अविवेक, हठ और मान बढाईके भूखे हैं यही समझना चाहिये।

शङ्का समाधान।

मरणभोजके सम्बंधमें लोग जो विविध शंकायें किया करते हैं वे प्रायः इसप्रकारकी हुआ करती हैं। उन्हें यहांपर लिखकर साथ ही उनका उत्तर भी दिया जाता है।

(१) शंका—क्या हमारे पूर्वज मूर्ख थे जो वे अभीतक नुक्ता (मरण भोज) करते आये हैं? हमें भी उनका अनुकरण करना चाहिये।

समाधान—पहली बात तो यह है कि प्रथमानुयोग या अन्य इतिहाससे यह सिद्ध नहीं होता कि हमारे प्राचीन पूर्वज मरणभोज करते थे। किसी भी चक्रवर्ती राजा महाराजा या महापुरुषके मरण-भोजका कहीं कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। कई विदेशी यात्री भारतमें आये जिनने भारतके छोटेसे छोटे रीतिरिवाजोंका वर्णन किया है, किन्तु उनने भी कहीं मरणभोजका कोई उल्लेख नहीं किया। इससे सिद्ध है कि हमारे प्राचीन पूर्वज मरणभोज नहीं करते थे।

हां, अर्वाचीन लोगोंमें इसका रिवाज अवश्य चल पड़ा है। किन्तु हमारा उसी समयसे पतन भी खूब हुआ है। मरणभोज आदि कुरीतियोंके कारण सारा देश नष्टभ्रष्ट होगया है। इसलिये यदि हमारे पहलेके लोगोंने ऐसी मूढ़ताका प्रारंभ किया था तो क्या हमें भी उसका अनुकरण करना आवश्यक है? हमें कुछ विवेकसे भी तो काम लेना चाहिये। क्या जिसके पूर्वज चोरी करते थे उसे भी चोरीका अनुकरण करना चाहिये? जिसके पूर्वज हत्या, व्यभिचार, अनाचार आदि दुष्कृत्य करते थे क्या उसको भी यही दुष्कृत्य करना चाहिये? यदि पेटार्थू क्रियाकाण्डियोंने पूर्वजोंको धोखेमें डालकर मरणभोजकी प्रथा चालू करादी और उनने इसीमें मृतात्माकी मुक्ति मानकर उसे प्रारंभ भी करदी तो क्या आज इसका इतना भयंकर परिणाम देखते हुये भी हमें यही करना चाहिये?

अज्ञान एवं परिस्थितिके वशीभूत होकर पूर्वजोंने तो बालविवाहकी प्रथा भी चालू करदी थी और वे दुधमुंहे बालकबालिकाओंके विवाह करते थे, तो क्या हमें भी उनका अनुकरण करना चाहिये? जिनके पूर्वज पशुयज्ञ करते थे, विधवाओंको अग्निचितामें जलाकर सती बनाते थे, काशी करवतपर जाकर आत्महत्या करते थे, यदि उनकी संतान अपने पूर्वजोंकी दुहाई दे और कहे कि क्या हमारे पूर्वज मूर्ख थे, तो क्या यह कृत्य आज भी उचित माने जायंगे? यदि नहीं तो मात्र मरणभोजके लिये ही क्यों पूर्वजोंकी दुहाई दीजाती है? पूर्वजोंके सभी कार्य अनुकरणीय नहीं होते, किन्तु उनमें यथार्थता और अयथार्थताका विचार करना चाहिये तथा हिताहित भी सोचना चाहिये।

(२) शंका—सम्बन्धीकी मृत्युमे जो शोक होता है उसे भुलानेके लिये नुक्ता (मरणभोज) करना आवश्यक है। मरणभोज करनेसे पंच लोग तथा जातिके स्त्री पुरुष अपने घर आते हैं और सान्त्वना देकर दुःख हलका करते हैं, इसलिये मरणभोज करना आवश्यक है।

समाधान—यह भी अज्ञानतापूर्ण दलील है। सम्बन्धीके मरनेपर यदि मरणभोज करनेसे ही लोग सान्त्वना देने आते हैं अन्यथा नहीं आयेंगे तो ऐसी भाड़ूती सान्त्वना प्राप्त करनेकी आकांक्षा रखना भयंकर भूल है। जो लोग मरणभोजके लोभसे तो सान्त्वना देने आवें और उसके बिना नहीं आवें ऐसे नीच पुरुषोंका तो मुंह देखना भी पाप है।

दूसरी बात यह है कि मरणभोज करनेसे यह उद्देश्य भी तो नहीं सरता। कारण कि मरणभोजके दिन तो घरके स्त्री पुरुष और भी रुदन करते हैं तथा मरणभोजके बाद भी महीनोंतक दुखी बने रहते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु जिन गरीब घरोंसे या अनाथ विधवाओंसे शक्ति न होनेपर भी मरणभोज कराया जाता है और वे बिरादरीके भयसे अपना मकान तथा गहनेतक बेचकर मरणभोज करती हैं उनकी सान्त्वना तो क्या होती है, उल्टी जिन्दगी ही बिगड़ जाती है। वे जीवनभरके लिये दुखी होजाती हैं। इसलिये मरणभोजसे सान्त्वना मिलनेकी दलील व्यर्थ है।

हम देखते हैं कि जिनके यहां मरणभोज नहीं होता या जहां चालीस वर्षसे नीचेका मरणभोज करनेका प्रतिबन्ध है वहां भी तो

दुःखशान्ति होती ही है और उनके यहां भी लोग समवेदना बतानेके लिये आते ही हैं। इसलिये भी मरणभोज करना व्यर्थ सिद्ध होता है।

(३) **शंका**—मृत व्यक्तिके बाद पंचोंको भोजन करानेसे मृतात्माको शान्ति मिलती है और समदत्ति (दान) का भी अवसर मिलता है।

समाधान—जैन सिद्धान्तानुसार मृतव्यक्तिके बाद भोजन कराने या न करानेसे मृतात्माका कोई संबंध नहीं रहता। वह जीव तो एक दो या तीन समयमें ही परभवमें पहुंच जाता है। इसलिये मरणभोजसे मृतात्माकी शान्ति मानना महामूढ़ता या घोर मिथ्यात्व है। रही समदत्तिकी बात, सो यह भी अज्ञानकी द्योतक है। इस विषयमें मैं आगे 'समदत्तिप्रकरण' में लिखूंगा।

(४) **शंका**—हम अभीतक दूसरोंके यहां मरणभोजमें जाकर लड्डू खाते रहे हैं तो अब अपने यहां मौका आनेपर विना बदला चुकाये कैसे बन्द करदें ?

समाधान—इस शंकामें अंधानुकरण और कायरता है। यदि अभीतक हम अपनी मूर्खतासे इस अमानुषिक कृत्यमें भाग लेते रहे हैं तो क्या आवश्यक्ता है कि मात्र बदला चुकानेकी गरजसे इस मूर्खताकी परम्पराको चालू रखा जाय ? जबकि अब मरणभोजकी घातकता मालूम होचुकी है तब उसे तत्काल छोड़ देना चाहिये और उसका प्रारंभ अपने घरसे ही करना चाहिये।

यदि इस शंकामें कोई दम है तो फिर किसीसे कोई भी व्यसन नहीं छुड़ाया जासकता। क्योंकि व्यसनी भी तो यही शंका कर

सकता है। वर्तमानमें जिन प्रान्तोंमें शराबका पीना कानूनन बन्द हुआ और होरहा है वहांके पियक्कड़ लोग भी तो यह कह सकते हैं कि अभीतक हम दूसरोंकी बहुतसी दावतोंमें जाकर शराब पीते रहे हैं, अब हम अपने यहां अवसर आनेपर कैसे बंद करदें? तब क्या कोई भी विवेकी इसी दलीलपर शराब पीना चालू रखना उचित मानेगा? यदि नहीं तो यह दलील मात्र मरणभोजपर कैसे लागू होसकती है?

दूसरी बात यह है कि जब धीरे धीरे मरणभोजकी प्रथा उठ जायगी तब यह प्रश्न स्वयमेव हल होजायगा। प्रारंभमें सहनशक्ति, साहस और अटलता चाहिये। यदि कोई अभीतक दूसरोंके मरणभोजमें शामिल होता रहा है तो अब अपनी मूर्खताको स्वीकार कर सबके सामने स्पष्ट कह देना चाहिये और भविष्यमें अपनेको मरणभोजमें शामिल न होनेकी घोषणा कर देनी चाहिये।

(५) **शंका**—मृत व्यक्तिकी यह अंतिम इच्छा थी कि उसके बाद उसका मरणभोज अवश्य ही किया जाय। इसके लिये वह कुछ रुपया भी निकालकर रख गया है। तो क्या हम उसकी आंखें बन्द होनेपर उसकी इच्छाको कुचल डालें और उसके द्रोही बनें?

समाधान—मृत व्यक्तिकी अयोग्य इच्छाकी भी पूर्ति करना उचित नहीं है। हां, उसके संकलित द्रव्यका सदुपयोग किया जा सकता है। उस द्रव्यको धर्मप्रचार, समाजसुधार और ऐसे ही हितकारी कार्योंमें लगाइये जिससे मृत व्यक्तिका नाम चिरस्थायी रह सके। एक दिनके भोजन करा देनेसे किसका कल्याण होनेवाला

है? और फिर मरणभोजके भयंकर परिणामको देखते हुये मृत व्यक्तिकी अज्ञानमयी इच्छाकी पूर्ति क्योंकर करनी चाहिये? विवेक भी तो कोई वस्तु है। प्रत्येक कार्यमें उसका उपयोग करना चाहिये।

(६) **शंका**-मरणभोजके समय अपने नगर और बाहरके भी लोग आकर एकत्रित होते हैं, उनसे दुःख हलका होता है और परिचय तथा सहानुभूति भी बढ़ती है।

समाधान-परिचय और सहानुभूतिके तो और भी अनेक अवसर तथा साधन मिल सकते हैं तब इस राक्षसी रूढ़िके नामपर क्यों ऐसी आशा रक्खी जाती है? रही लोगोंके एकत्रित होनेकी बात, सो जिसे सच्ची सहानुभूति होगी वह मरणभोज न होनेपर भी दुःखके अवसरपर आ जायगा और सच्ची समवेदना प्रगट करेगा। किन्तु जो लड्डुओंके निमित्तसे ही दौड़े आते हैं, उन स्वार्थी लोगोंकी बनावटी सहानुभूतिसे भी क्या लाभ? उनकी सहानुभूति दुखियासे नहीं किन्तु लड्डुओंसे होती है। अन्यथा क्या कोई बतायगा कि कभी मरणभोज-भोजियोंने उस बिचारी विधवासे पूछा भी है कि तूने मरणभोजका प्रबन्ध कहांसे किया? गहने और मकान बेचकर अब क्या करेगी? तेरा और तेरे बच्चोंका पालन कैसे होगा? जब आवश्यक्ता पड़े हम तेरी मदद करेंगे। इत्यादि। भला, जो लोग रक्तके लड्डू खाते हैं उनमें इतनी मानवता आये भी कहांसे? वे तो उल्टे उस विधवाके मकानको कुर्क कराने, बिकवाने और उसे मिटानेमें शामिल हो जाते हैं।

(७) **शंका**-जिनके पास धन है वह मरणभोज करें, और

जिनके पास नहीं है उनसे जबर्दस्ती कौन करता है? गरीब लोग मात्र अपने कुटुम्बीजनोंको या पांच पंचोंको जिमा दें तो क्रिया हो जाती है। यह तो अपनी अपनी शक्तिके मुताबिक करना चाहिये। इसमें क्या हर्ज है?

समाधान–ऐसी दलीलें कट्टर स्थितिपालक पण्डितोंके मुंहसे भी सुनी जाती हैं। कितने ही मुखिया पंच लोग भी ऐसा ही कहते सुने गये हैं; किन्तु यह मात्र शब्दछल है। कारण कि किसी भी रूपमें ऐच्छिक या अनैच्छिक मरणभोजकी प्रथा चालू रहनेसे यह भयंकर अत्याचार नहीं मिट सक्ता। शक्ति अशक्ति तथा इच्छा अनिच्छाकी बातें करनेवाले लोग उस मृत व्यक्तिके कुटुम्बको इतना शर्मिन्दा और विवश बना देते हैं कि गरीबसे गरीब लोगोंको भी मरणभोज करना ही पड़ता है। जो मरणभोज नहीं करता उसे बद-नाम किया जाता है, उसके आगे पीछे बुराइयाँ की जाती हैं, विविध कल्पनायें की जाती हैं, असहयोगकी धमकी दी जाती है, बहिष्कारका भय दिखाया जाता है, विवाह-शादियोंमें अड़चनें पैदा की जाती हैं और इस तरह मजबूर कर दिया जाता है कि घरमें कलके लिये खानेको न होनेपर भी मरणभोज करना पड़ता है।

कहीं कहीं तो ऐसा भी रिवाज़ है कि जब मरणभोज करने-वालेको भारी व्याज देने पर भी उधार रुपया नहीं मिलता तब पंच लोग उससे दण्डस्वरूप चिट्ठी लिखवा लेते हैं। जिसका अर्थ यह है कि गांवके लोग तुम्हारी शादी आदिमें केवल इसी शर्त पर शामिल होंगे जब कि तुम अपने ऊपर चढ़े हुये मौसरका व्याज प्रतिमास ५) के

हिसाबसे पंचोंकी पूंजीमें जमा कराने रहोंगे। ऐसा अनिवार्य मरण-भोजका कानून कई गांवोंमें पाया जाता है। तब फिर गरीबोंकी मर्जी पर छोड़नेकी बात तो सर्वथा असत्य और छलपूर्ण है।

(८) शङ्का–यदि मरणभोज नहीं किया गया तो जैनेतर समाज हमसे घृणा करेगी और हमें नीच मानेगी।

समाधान–यह भय भी व्यर्थ है। और संभवतः इसी भयको लेकर ही जैन समाजमें मरणभोजका प्रारम्भ हुआ हो। किन्तु यह प्रबल आन्दोलनके साथ बंद किया जासकता है। और सर्वत्र ही मरणभोजके बन्द होनेपर तथा जैनेतर जनताको यह मालूम होजाने पर कि मरणभोज जैनधर्मके विरुद्ध है–कोई भी विरोध नहीं करेगा।

जैन लोग हिन्दुओंके देवी देवताओंको नहीं पूजते, उनकी तरह श्राद्धादिक नहीं करते और उनके आचार विचारसे जैनोंका आचार विचार भिन्न ही रहता है। ऐसी स्थितिमें जैनेतर लोग जैनोंसे किसी प्रकारकी घृणा नहीं करते। इस प्रकार जैन समाजमें सार्वत्रिक मरणभोज बन्द होजानेपर कोई किसी प्रकारकी घृणा नहीं करेगा। अभी भी जो लोग मरणभोज नहीं करते या जिन गांवोंमें ४० वर्षसे कम आयुवालोंका मरणभोज पंचायतने बन्द कर दिया है वहां पर जैनेतर जनता जैनोंसे घृणा नहीं करती। कारण कि वह जानती है कि इनकी समाजको यह कार्य मंजूर नहीं है और यह इनके धर्मसे खिलाफ है। तब घृणादिका कोई प्रश्न ही नहीं रहेगा। दूसरी बात यह है कि किसीके कहने हमें धर्मविरुद्ध और बुरे कार्य नहीं करना चाहिये।

(९) **शंका**—जब कि मरणभोजकी प्रथा उठा दी जायगी तो फिर मरणशुद्धि-सूतक आदिकी भी क्या जरूरत है? उसका कथन भी तो शास्त्रोंमें नहीं है।

समाधान—मरणभोजसे शुद्धिका कोई संबन्ध नहीं है। मरण शुद्धिकी आवश्यक्ता तो प्रत्येक बुद्धिमानके ध्यानमें आ सक्ती है। कारण कि मरणके कारण स्वाभाविक अशुचिता हो ही जाती है। पं० दौलतरामजीके क्रियाकोषमें भी शुद्धिका विधान है। और यदि नहीं भी होता तो भी बुद्धि इतना स्वीकार किये बिना नहीं रहती कि मरणशुद्धि करना-नहाना धोना आदि आवश्यक है। किन्तु मरणभोजका इस शुद्धिके साथ गंठजोड़ा कर देना उचित नहीं है।

(१०) **शंका**-तेरहवें दिन मरणभोज करके शुद्धि होती है और तभी गृहस्थ पूजा तथा दानादि देनेका अधिकारी होता है। मरणभोजके बिना उसमें पूजा दानादिकी पात्रता कैसे आसकती है?

समाधान—तेरहवें दिन शुद्धि होना तो कालशुद्धि कहलाती है। मरणभोजमें शुद्धि करनेकी शक्ति नहीं है। यदि मरणभोज करनेसे ही शुद्धि होती है तो इसका स्पष्ट अर्थ यही हुआ कि मरणभोजमें जो लोग जीमनेको आते हैं वे अशुद्धिमें जीमते हैं और उनके जीम लेनेपर शुद्धि होती है। तब तो पंच लोग अशुद्धिमें जीमनेके कारण पापके भागी होंगे।

यदि कोई यों कहे कि शुद्धि तो तेरहवें दिन हो ही जाती है उसके बाद मरणभोज होता है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि शुद्धि करनेमें मरणभोज कारण नहीं है, कारण कि वह शुद्धि होनेके बाद

तेरहवें दिन स्वयमेव शुद्ध होजाते हैं और दानपूजादि सत्कर्म करने लगते हैं।

जहांपर मरणभोजकी कतई बंदी कर दी गई है या जहां ४०-४५ वर्षके पूर्वका मरणभोज नहीं होता वहां भी तो तेरहवें दिन (मरणभोज न करनेपर भी) स्वयमेव शुद्धि होजाती है और वह दान पूजादिका अधिकारी होजाता है। वर्तमानमें भी ऐसे घरोंमें मुनिराज आहार लेते हैं और वे लोग पूजादि करते हैं। तात्पर्य यह है कि यह कालशुद्धि है जो तेरहवें दिन स्वयमेव होजाती है। इसमें मरणभोज कार्यकारी नहीं है। शास्त्रोंमें भी कालशुद्धिपर ही जोर दिया है और लिखा है कि:—

ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रा दिनैः शुद्धयन्ति पंचभिः।
दश द्वादशभिः पक्षाद्यथासंख्यप्रयोगतः ॥ १५३ ॥

—प्रायश्चित्तसंग्रह चूलिका।

अर्थात्–ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र अपने किसी स्वजनके मरजाने पर क्रमसे पांच दिन, दश दिन, बारह दिन और पंद्रह दिन बीत जानेसे शुद्ध होते हैं। (टीकाकार पं० पन्नालालजी सोनी)

इससे बिलकुल स्पष्ट है कि वैश्य लोग १२ दिन बीत जानेसे स्वयमेव शुद्ध होजाते हैं। मरणभोज आदिकी मिथ्यारूढ़ि तो ढोंगी लड्डू लोलुपियों द्वारा चलाई गई है और ऐसे लोग ही इसकी पुष्टि करते रहते हैं।

यहां तो मात्र १० शंकायें उठाकर ही उनका यथायोग्य समाधान किया गया है। किन्तु और भी जो भाई इस सम्बन्धमें किसी

तरहकी शंका करेंगे उनका मैं यथाशक्य समाधान करनेके लिये तैयार हूं। मैं देखता हूं कि समाजमें मरणभोजके विषयमें प्रायः ऐसी या इस प्रकारकी ही शंकायें बहुधा की जाती हैं जिनका उल्लेख और समाधान किया जाचुका है। आशा है कि इनसे मरणभोज भोजियोंका कुछ समाधान अवश्य होगा।

समदत्ति और लान।

जैन समाजके लिये यह दुर्भाग्यकी बात है कि उसके पीछे अनेक विनाशक रूढ़ियाँ लगी हुई हैं। जिस मरणभोजके विषयमें मैं अभी लिख आया हूँ उतने मात्रसे ही समाजका छुटकारा नहीं होने पाता; किन्तु कई प्रान्तोंमें मरणोत्सवमें लान भी बांटी जाती है। और इसका अधिकतर रिवाज खण्डेलवाल जैनोंमें है। दूसरी कई जैन जातियोंमें भी इसका रिवाज है। इस रिवाजने भी जैन समाजकी खूब दुर्दशा की है। इससे भी जुल्म तो इस बातका है कि इसे हमारे कुछ मरणभोजिया पण्डित धर्मका अङ्ग और समदत्तिका रूप बताते हैं, जिससे भोली जनता इसे नहीं छोड़ सकती।

हमारे कई पाठक संभवतः 'लान' को नहीं समझते होंगे, अतः कोई व्यक्ति, मर जाता है तो उसके उपलक्षमें कई स्थानोंपर बर्तन आदि बांटनेका रिवाज है। इसे लान (लाण या लाहन-लाणी) कहते हैं। इस निमित्त थालियों कटोरी गिलास आदि दिये जाते हैं। गरीबोंको भी देखादेखी यह कार्य करना पड़ता है और वे इसके कारण सदाके लिये पिस जाते हैं।

कुछ त्रिवर्णाचारी पण्डित जैसे मरणभोजको आवश्यक क्रिया बतलाते हैं वैसे लानको भी धर्मका आवश्यक अंग और समदत्ति कहते हैं। इस प्रकार आर्षाज्ञाका विचार न करके केवल रूढ़िको ही धर्म मान लेना कितना भयंकर अज्ञान है! ब्राह्मणों और कुछ भोजनभट्ट भट्टारकोंकी कृपासे जैन समाजमें मरणभोज ही नहीं; किन्तु श्राद्ध, तर्पण, गौदान, पीपल पूजा, पिण्डदान और ऐसी ही अनेक मिथ्या मान्यतायें घुस गई हैं। और वे सब त्रिवर्णाचारादि रचकर धर्माज्ञाके रूपमें सामने रखीगई हैं। उन्हींमेंसे मरणभोज और मरणोपक्षमें लान बांटना भी है। लेकिन सचमुचमें लान या मरणभोज श्राद्धका रूपान्तर है जोकि जैनशास्त्रानुसार मिथ्यात्व माना गया है।

मैं मरणभोज और लानको श्राद्धका रूपान्तर इसलिये कह रहा हूं कि वह मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे दिया जाता है जो कि मरणभोजिया पण्डितोंके कथनानुसार समदत्ति-दान कहा जाता है। ऐसे दानका निषेध पं० आशाधरजीने सागारधर्मामृत अध्याय ५ श्लोक ५३की टीकामें किया है। उनने लिखा है कि-

" श्राद्धं मृतपित्राद्युद्देशेन दानम्। "

अर्थात्—मृत पितादिके उद्देश्यसे दान करना श्राद्ध है और वह "न दद्यात्" नहीं देना चाहिये। उनने ऐसे श्राद्धको (सुदृग्द्रुहि श्राद्धादौ) सम्यक्तका घातक बताया है। इसलिये लानके नामपर बर्तन बांटना या समदत्तिके नामपर मरणभोज देना एक प्रकारका श्राद्ध है और सम्यक्तका घातक होनेसे त्याज्य है।

यहां पर कोई यह कह सकता है कि जब मरणोपलक्षमें बर्त-

नादिका दान (लान) देना मिथ्यात्व है तब आपने अपने स्व० पिताजीके नामपर यह पुस्तक क्यों वितरण की? इसका समाधान तनिक ही विवेकपूर्वक विचार करनेसे होजाता है। लान (बर्तन) बांटना एक प्रकारका परिग्रह देना है। किन्तु पुस्तकादि परिग्रह नहीं है। परिग्रहपूर्ण दान देनेका जैनाचार्योंने निषेध किया है। यथा:--

जीवा येन निहन्यन्ते येन पात्रं विनश्यति।
रागो विवर्द्धते येन यस्मात् संपद्यते भयम् ॥ ९-४४ ॥
आरम्भा येन जन्यन्ते दुःखितं यच्च जायते।
धर्मकामैर्न तद्देयं कदाचन निगद्यते ॥ ९-४५ ॥

—अमितगति श्रावकाचार।

अर्थात्–जिससे जीवोंका घात हो, पात्रका विनाश हो, राग बढ़े, भय उत्पन्न हो, आरम्भ हो, दुःखी हो वह वस्तु धर्मात्मा पुरुषों द्वारा नहीं दीजानी चाहिये।

यहांपर परिग्रहकारी द्रव्य-बर्तन आदि देनेका निषेध किया है। किन्तु पुस्तकों-ग्रंथोंका वितरण करना न तो आरम्भ परिग्रहकारी है और न वह अनर्थकारी-दुःखदायी है। ग्रंथोंको तो अपरिग्रही मुनिराज भी ग्रहण करते हैं। इसलिये यदि किसीको [illegible] द्रव्य व्यय करना है तो वह 'शास्त्रदान' कर सकता है। किन्तु 'समदृष्टि' की ओटमें 'लान' नहीं बांट सकता। वह तो साक्षात् मिथ्यात्व है। शास्त्रदानको 'लान' नहीं कह सकते, क्योंकि वह तो प्रत्येक शास्त्रदान है जो चार दानोंमेंसे एक है। इसीलिए शास्त्रकारोंने "[illegible]" कहकर द्रव्य दानका निषेध किया है, किन्तु शास्त्र दानका कहीं भी निषेध नहीं किया गया।

जैन समाजका यह दुर्भाग्य है कि कुछ दुराग्रही लोगोंकी कृपासे यहां मरणभोज तथा लान आदिका दौरदौरा है और उसे समदत्ति दान कहकर धार्मिकताका चोला पहनाया जाता है। किन्तु उन्हें इसका विचार ही नहीं कि वह धार्मिकता किस कामकी जिससे सैकड़ों घर वर्बाद होजांय और लोग जीवनभर चिन्ताकी चितामें जलते रहें। सहृदयतासे विचारिये कि मरणभोज और लान समदत्ति है या जीवनदत्ति ?

कुछ लोग मरणभोज और लानको "पात्रदत्ति" भी कहते हैं। किन्तु यह भी सरासर मूर्खता है। कारण कि शास्त्रोंमें पात्र-दान करना पुण्य और सद्भाग्यका विषय बताया है। ऐसी स्थितिमें यदि किसीका पुत्र या पति मर जावे तो क्या उसकी माता और पत्नीको पुण्योदय या सौभाग्यका विषय मानना चाहिये ? क्योंकि उसे पात्र-दत्तिका पुण्यावसर मिला है। यदि नहीं तो मरणभोज और लानको पात्रदत्ति कहनेवाले अपने दुराग्रहको क्यों नहीं छोड़ देते ?

पात्रदत्ति तो वह है जिसमें दाता पात्र अपात्र कुपात्रकी परीक्षा करे और सत्पात्रको ही दान दे। किन्तु लान या मरणभोजमें तो पात्रादिका कोई विचार नहीं होता। वह तो जैन और जैनेतर सभी व्यवहारी जनोंको दिया जाता है। इसलिये भी इसे पात्रदत्ति कहना भयंकर भूल है। दूसरी बात यह है कि लान और मरणभोजमें शामिल होनेवाले जैन कोई भिक्षुक तो हैं नहीं कि उन्हें दान दिया जाय। यह तो अदले बदलेका व्यवहार चला आरहा है। और जब यह आज समाजके लिये घातक सिद्ध होरहा है तो इसे सहर्ष छोड़

मरणभोज निषेधक कानून ।

यदि समाज इस भयंकर प्रथाका स्वेच्छासे त्याग नहीं करेगी तो वह समय दूर नहीं है जब उसे यह प्रथा कानूनन छोड़ना पड़ेगी। बिचारी गरीब और विधवाओंको शक्ति न होने पर भी देखादेखी, नाक रखनेके लिये, पंचोंके भयसे अपने पति और पुत्रोंका मरणभोज करना पड़ता है तथा 'लान' में हजारों रुपया बर्बाद कर देना पड़ते हैं। यदि समाजका यह पाप जल्दी दूर नहीं हुआ तो इसके लिये जल्दीसे जल्दी कानून बनाया जाना आवश्यक है। समाज-हितैषियोंको इस ओर शीघ्र ही विचार करना चाहिये।

यहां कोई यह कह सकता है कि हमारे सामाजिक एवं व्यक्तिगत कार्योंमें कानूनी दखलकी कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह तो मात्र मनोदुर्बलता है। जब जनता ऐसी रूढ़ियोंमें फंसी रहती है जिनसे उनका विनाश होता रहता है तब उनसे छुटकारा दिलानेके लिये कानूनकी आवश्यकता होती है। शारदा एक्ट हमारे सामने है। अपने लड़के, लड़कियोंका विवाह कब करें और किस आयुमें करना यह, माता पिताका व्यक्तिगत धर्म है। किन्तु जब समाजने दुधमुंहे छोटे छोटे बच्चोंका भी विवाह करना शुरू कर दिया और वह अनेक सामाजिक आन्दोलन होनेपर भी नहीं रुका तब सरकारको सामूहिक हितकी दृष्टिसे शारदा कानून बना। इसी प्रकार यदि समाजने मरणभोजकी घातक प्रथाको नहीं रोका तो यह निश्चित है कि उसे रोकनेके लिये कानून बनाया जायगा। इसमें [illegible] है

कि कुछ देशी राज्योंका ध्यान इस ओर गया है और उनने इस प्रकार कानून बनाये हैं ।

(१) **ग्वालियर स्टेट**—मैंने तारीख २७ जून सन् १९३६ के ग्वालियर गज़टमें प्रगट हुआ 'मुसव्विदा कानून नुक्ता' देखा था। वह किस रूपमें पास हुआ सो तो मुझे मालूम नहीं, किन्तु उसका सारांश यह है कि—" चूंकि वफातके बाद या उसके सिलसिलेमें जो कौमी खाने कदीमी रिवाज़की बिना पर दिये जाते हैं और फिजूलखर्ची की जाती है उस पर जब्त कायम किया जाये ताकि आवामकी तरफसे फिजूलखर्चीकी रोक हो और उनकी आर्थिक हालत सुधरे । इस लिये हुक्म फरमाया जाता है कि–नुक्तामें वह खाना शामिल है जो मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे (मौसर, तेरहवीं, चालीसवां) दिया जाता है । हां, जिन्हें इस विषयमें धार्मिक विश्वास है उसकी रक्षाके लिये इस कानूनमें अपने खानदानके अधिकसे अधिक ५१ आदमियोंको जीमनेकी छूट रहेगी । मरणो-पलक्षमें लान (वर्तन आदि) बांटना भी कानूनके खिलाफ होगा । इस कानूनका पालन करनेपर यदि कोई पंचायत किसी प्रकारकी धमकी दे, दबाव डाले, बहिष्कार करे या दंड देगी तो वह अपराधी ठहराई जायगी । तथा जो व्यक्ति इस कानूनका भंग करेगा उसे ५००) जुर्माना और एक सप्ताह तककी सजा होगी ।

यदि ऐसा खिलाफ अमल कोई जाति या पंचायत करेगी तो उसका प्रत्येक मेम्बर अपराधी माना जायगा । किसी भी मजिस्ट्रेटको इत्तला मिलनेपर कि कोई नुक्तादिकी तैयारी कर रहा है तो वह उसे

ऐसा न करनेको नोटिस देगा । फिर भी यदि कोई उसका उल्लंघन करेगा तो उसे १०००) जुर्माना और एक माह तककी सजा होगी । नुक्ता करनेवालेके विरुद्ध यदि कोई दावा दायर करे और उसमें अपराधी सजायाब हो तो अदालत उसके जुर्मानेमेंसे आधी रकम दावा करनेवालेको इनाम दे सकेगी और गलत साबित होनेपर १००) तक दण्ड भी कर सकेगी ।"

(२) होलकर स्टेट—इन्दौर नुक्ता कानूनकी स्वीकृति होलकर स्टेटके लिये महाराजा सा०ने १० जून सन् १९३१ को दी थी और ता० १५ जून ३१से उसका अमल किया जारहा है । इस कानूनका सार यह है—" नुक्ता शब्दमें मोसर, कारज, बरसी, छमाही मृत्यु संबन्धी रसोई, व इतर ऐसे भोजोंका समावेश होगा जो किसी मनुष्यकी मृत्युके उपलक्षमें किये जायं । कोई भी व्यक्ति अपने यहां किसी नुक्तेमें १०१ से अधिक मनुष्योंको भोजन नहीं जिमा सकेगा । धार्मिक परिस्थितियोंमें [illegible] करके जिलाधीश ५०० व्यक्तियों तकके जिमानेकी स्वीकृति दे सकेंगे । इस स्वीकृतिके अतिरिक्त किसी नुक्तेमें भी नहीं जिमाये जा सकेंगे । इन संख्याओंमें उन रिश्तेदारोंका समावेश नहीं होगा जो स्वतः कुटुम्बियोंके साथ समवेदना प्रगट करनेके लिये आते हों । शर्त यह कि उन्हें नुक्तेका निमंत्रण भेजकर न बुलाया हो ।

कोई भी व्यक्ति किसी मृत्युके संबंधमें [illegible] या [illegible] करनेके बदले अपनी जातिमें बर्तन नहीं बांट सकेगा । किसीको यह अधिकार न होगा कि वह दूसरे किसी व्यक्तिको जातिसे बाहर या बहिष्कार

नसीहतके या किसी दूसरे तरीकेसे नुक्ता करने या लान बांटनेकी उत्तेजना दे। जो इसके खिलाफ कार्य करेगा उसे ५००) तक जुर्माना या एक हफ्तेकी सजा या दोनों सजायें दी जावेंगी। इस कानूनके खिलाफ कार्य होनेकी इत्तला यदि मजिष्ट्रेटके पास पहुंचे तो वह उसे रोकनेके लिये नोटिस देगा। और यदि उसका पालन न किया गया तो १०००) जुर्माना या एक महीनेकी सजा या दोनों सजायें दी जा सकेंगी। कानूनके खिलाफ काम करनेवालेकी इत्तला अदालतमें देनेवालेको जुर्मानेकी आधी रकम तक दी जा सकेगी।"

इसी प्रकार अलवर और जोधपुर आदि स्टेटोंमें भी नुक्ता निषेधक कानून बनाये गये थे, किन्तु वे अधिक समय तक नहीं चले। कारण कि उनमें बहुत ढील और छूट थी तथा उस ओर विशेष ध्यान भी नहीं दिया गया। ग्वालियर और होल्कर स्टेटके कानून भी यद्यपि बहुत ढीले हैं, फिर भी कुछ न कुछ तो प्रतिबंध रहेगा ही। मुझे जहांतक माल्रूम हुआ है इन्दौरमें लोग मरणभोज न करके जलयात्रा, रथयात्रा, स्वामिवत्सल आदिके नामपर जिमाते हैं इसलिये कानूनका ठीक अमल नहीं होने पाता। दूसरी बात यह है कि धार्मिक दृष्टिका विचार कर मरणभोज भोजियोंकी संख्या भी निश्चित की गई है, जो इन्दौर स्टेटमें तो बहुत ज्यादा है। फिर भी इन कानूनोंसे जो जितना प्रतिबन्ध हो सके उतना ही ठीक है।

इन कानूनोंमें सबसे अच्छी बात तो यह है कि किसीको भी 'लान' बांटनेकी छूट नहीं दी गई है। और मरणभोज विरोधी

फरियाद करनेवालेको (मुकदमेमें दण्ड होनेपर) इनाम देनेकी घोषणा की गई है। इसलिये युवकोंको साहसपूर्वक इन कानूनोंका उपयोग करना चाहिये। यदि इसी प्रकार या इससे भी कड़ा कानून बृटिश भारतमें बन जाय तो देशका बहुत भला हो। मरणभोजके बोझसे भारतीय समाज मरी जा रही है। देश-हितैषियोंका कर्तव्य है कि वे इसे शीघ्र ही बचा लें। जैन समाजमेंसे तो यह पाप सबसे पहले निकल जाना चाहिये। इसके लिये हमारी परिषद् आदि संस्थाओं और जीवित युवक संघोंको प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न और आन्दोलनका प्रभाव तत्काल न होकर भी धीरे धीरे तो अवश्य होता है। इसलिये हमें प्रयत्न करना चाहिये कि जनमत मरणभोजके विरुद्ध हो जाय।

मरणभोज विरोधी आन्दोलन।

जब तक समाज किसी कार्यके हिताहितको नहीं जान पाती वहां तक उसे छोड़ नहीं सकती। इसलिये अन्य कुरूढ़ियोंकी भांति मरणभोजके विरुद्ध भी प्रबल आन्दोलन होनेकी आवश्यकता है। कुछ वर्षोंसे हमारी सामाजिक सभाओं और युवक संघोंका ध्यान इस ओर गया है। और उनने मरणभोज विरोधी प्रस्ताव करके या मरणभोजकी [illegible] लिखित पर्चे इस पापको कुछ हल्का किया है।

जैन समाजमें सबसे पुरानी सभा भा० दिगम्बर जैन महासभा है, किन्तु दुर्भाग्यकी बात है कि उसने मरणभोजके विरुद्ध कोई प्रस्ताव नहीं किया। वह करती भी कैसे? कारण कि [illegible] भी इसके [illegible]

कर्ता धर्ता मरणभोजको धार्मिक, आवश्यक, समदत्ति, पात्रदत्ति और न जाने क्या क्या समझते हैं। किन्तु अन्य जातीय सभाओं, युवक संघों, पंचायतों तथा परिषद आदि द्वारा कभी कभी प्रयत्न होता रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप आज समाजके कुछ भागमें मरणभोजके प्रति घृणा उत्पन्न होगई है।

परवार सभाका प्रयत्न—

दिगम्बर जैन समाजमें '**परवार सभा**' यद्यपि जातीय सभा थी, किन्तु उसने मरणभोजके विरुद्ध खूब आन्दोलन किया था। सन् १९२५ में उसके पपौराके अष्टमाधिवेशनमें श्री० **सिंघई कुंवरसेनजी सिवनीने** न्यायाचार्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णीके सभापतित्वमें एक प्रस्ताव उपस्थित किया था। प्रस्ताव रखते हुये आपने कहा कि:—

परवार समाजमें जो मरण जीवनारकी प्रथा है वह इस प्रकार है "जिसका अग्निसंस्कार हो उसकी जीवनवार अवश्य हो।" किंतु आजकल तीस वर्षसे कम उमरकी मृत्यु संख्या अधिक होती है और इनकी जीवनवारोंमें जो लोग भोजन करने जाते हैं उन्हें अपना कलेजा पत्थरका करना पड़ता है। घरमें रोना पीटना होरहा है, जीमनेवाले दिलमें रोते हुए भोजन करते हैं। **जीवनवारकी प्रथा कोई शास्त्रोक्त नहीं, इसके बन्द करनेसे धर्मका नाश नहीं।** आज भी अनेक दिगम्बर जैन जातियोंमें जीवनवारकी प्रथा बन्द है। अपने यहां भी जिस बालकका मृतक संस्कार होता है उसकी जीवनवार नहीं होती। इन सब बातोंपर लक्ष्य करके यह

प्रस्ताव पास किया जावे कि—"४० वर्षसे कम उमरकी मृत्यु होनेपर उसका जीमनवार बिलकुल न हो।"

यद्यपि यह प्रस्ताव बहुत सीधा सादा था और इसमें ४० वर्षकी ही हद रखी गई थी, फिर भी कुछ लोगोंने उसमें ऐसे संशोधन पेश किये जो जैन समाजको कलंकित करनेवाले हैं। इनसे ज्ञात होजायगा कि जैन समाजमें मरणभोजका कितना जघन्य मोह है। उन संशोधनोंके कुछ नमूने इसप्रकार हैं—

१—कुछ कन्याओंको तो जिमाना ही चाहिये। २—जितने लोग लाशीके साथ श्मशान जावें उन्हें जिमाना चाहिये। ३—पन्द्रह वर्षसे अधिक आयुके मृत व्यक्तिका मरणभोज किया जाय। ४—अविवाहितकी जीमनवार न करके विवाहितोंका मरणभोज किया जाय। ५—यह पुरानी प्रथा है, धर्मसे इसका सम्बन्ध है (?) इसलिये इसे नहीं तोड़ना चाहिये। ६—चालीस एवं अधिक होजाते हैं, इसलिये बीस वर्ष तककी ही आयु रखनी चाहिये। इत्यादि।

जहां इसप्रकारके विचित्र संशोधन पेश किये गये थे वहां हमारे बुन्देलखण्डके अनेक विचारशील श्रीमानोंने इन संशोधनोंका डटकर विरोध भी किया और निम्नप्रकार अपने विचार प्रगट किये थे:—

(१) **सिंघई कुंवरसेनजी सिवनी**—धर्मशास्त्रोंमें तेरह दिन केवल शुद्धिका होता है उसका जीमनवारसे कोई संबंध नहीं है। शुद्धिके लिये भोजन आवश्यक नहीं है। इसे धार्मिक रूप रंग न देना चाहिये। इस रूढ़िके चालू रहनेसे समाजकी

बड़ी हानि होरही है। कई जैन जातियोंने यह रूढ़ि बन्द भी कर दी है। इसलिये अपनी समाजमें यह रूढ़ि बन्द करना नई बात नहीं है। इसका शीघ्र ही बन्द किया जाना जरूरी है।

(२) **बाबू कस्तूरचन्दजी वकील जबलपुर**-यह प्रथा तेरईकी वर्तमान प्रवृत्तिको निन्दनीय समझकर घृणाकी दृष्टिसे देखती है, इसलिये बन्द की जावे।

(३) **सेठ पन्नालालजी टडैया ललितपुर**-यह प्रथा बहुत भद्दी है। एकवार हमारे यहां चौधरीजीके घर ऐसा मौका आ पड़ा था कि घरवाले शोकके मारे रो रहे थे, उधर भोजन करनेवालोंको सिर्फ अपनी ही चिन्ता थी। वास्तवमें यह प्रथा बहुत बुरी है। हमें उनकी बातोंपर बहुत रंज होता है जो ताना मारमारकर भोजन खाते हैं। जो विपत्तिमें फंसा हुआ है उसके यहां भोजन करना ताना मारना है। यह सर्वथा अनुचित है।

(४) **सेठ मूलचन्दजी बरुआसागर**-सिर्फ कमीनोंको खिलाना चाहिये। लोगोंपर इस बातका आक्षेप न किया जावे कि हमने तेरई नहीं दी।

(५) **पं० मौजीलालजी सागर**-ये कैसे कठोर हृदय हैं जो कहते हैं कि दस वर्ष तकका मरणभोज न किया जाय। अरे! यह तो इतनी भद्दी प्रथा है कि किसीका भी नुकता न करना चाहिये, चाहे गरीब हो या अमीर। सभीको एक तरहका व्यवहार करना चाहिये।

(६) **सेठ लालचन्दजी दमोह**-हमारी जातिमें यह

एक रूढ़ि होगई है। इसे बन्द कर देना चाहिये। पंगत करनेकी कोई आवश्यक्ता नहीं है।

(७) **सेठ चन्द्रभानजी बमराना**—मैं सिंघई कुंवरसेनजीके प्रस्तावका समर्थन करता हूं, अर्थात् यह [illegible] प्रथा बन्द करदी जावे।

(८) **श्री० बेनीप्रसादजी**—जो सेठजी साहबने कहा वही पास करना चाहिये।

(९) **बाबू गोकुलचन्दजी वकील**—यह रूढ़ियोंकी बात है, जल्दी न छूटेगी, नहीं तो यह प्रथा इतनी बुरी है कि बिना प्रस्ताव पास किये ही छूट जाना चाहिये थी। एकबार हमारे यहां (दमोहमें) पंचोंने एक मनुष्यसे कहा कि तुम्हें चारों पुराकी पंगत देना पड़ेगी। किन्तु समय थोड़ा था, इसलिये रात रातभर तैयारी करना पड़ी। और बेसन पीसनेवाली स्त्रियां अपना समय काटनेके लिये रातभर आनन्दके गीत गाती थीं। जरा विचारनेकी बात है कि घरमें तो मातम है, किन्तु इस भोजके पीछे आनन्दके गीत गाये जाते हैं। यह लज्जित करनेवाली प्रथा है।

बुन्देलखण्डके इन मुखिया श्रीमानोंके उद्गार पढ़कर किसे संतोष और हर्ष न होगा? यदि सचमुच ही हमारे मुखिया लोग अपने वचनोंका पालन करते कराते तो कबके इस बुन्देलखण्ड प्रान्तसे तो यह पाप कभीका हट जाता। किन्तु बुन्देलखण्ड प्रान्तका यह दुर्भाग्य है कि यहां मरणभोजकी अति भयंकर एवं हृदयद्रावक घटनायें होती रहती हैं।

स्वानुभव ।

कहींपर यदि मरणभोजके लिये मृत व्यक्तिकी अमुक आयुकी हद बांधी गई है, फिर भी उसपर चलना तो कठिन ही है। कोई व्यक्ति मरणभोज न करना चाहे तो उसकी नगरमें चर्चा होती है, उसकी बुराई की जाती है और उसपर विविध रूपमें ऐसा दबाव डाला जाता है कि उसे मरणभोज बलात् करना ही पड़ता है।

मेरे जीवनमें ऐसे तीन अवसर आये हैं। एक तो नवम्बर सन् १९२८ में मेरी माताजीका स्वर्गवास होगया था। उस समय चारों तरफसे दबाव डाला गया था। मैं उस समय विद्यार्थी था। लोगोंकी बातोंमें तथा कुटुंबियोंके दबावमें आकर माताजीका मरणभोज करना पड़ा। यदि सच पूछा जाय तो उस समय मुझे घरके कार्य करने धरनेका अधिकार ही क्या था? इसलिये वह मेरे द्वारा नहीं किया गया था, फिर भी मैं डटकर विरोध नहीं कर सका। फिर नवम्बर सन् ३१ में हमारे बड़े भाई श्री० बंशीधरजीका ३२ वर्षकी आयुमें ही स्वर्गवास हुआ। उस समय भी कुछ लोगोंने मरणभोजके लिये मुझे दबाया, मगर मैं दृढ़ था। कुछ सज्जन मुझे साहस और साथ देनेके लिये भी तैयार थे। मैं इससे पूर्व ही निश्चय कर चुका था कि न तो मैं मरणभोज करूंगा और न ऐसे पापकृत्यमें सम्मिलित ही होऊँगा। इसलिये मैंने सबसे दृढ़तापूर्वक कह दिया कि यह मरणभोज कदापि नहीं होगा। तब इस सम्बंधमें खूब चर्चा होती रही।

विरोधी चर्चा होते देखकर मैंने मुखिया लोगोंसे मिलना शुरू

किया। उनसे पूछा कि क्या आप लोग ऐसे मरणभोजके लिये भी तैयार हैं कि वृद्ध पिता जीवित है और युवक पुत्र मर गया है? तब मुझसे सबने प्रत्यक्षमें तो इंकार कर दिया, लेकिन भीतर ही भीतर विरोधी चर्चा चलती रही। सबसे अधिक कठिनाई तो यह थी कि मेरे कुटुम्बीजन स्वयं मरणभोजके लिये आग्रह कर रहे थे। कारण कि उन्हें नाक रखनेकी पड़ी थी। किन्तु हमारे पिताजीके विचार मेरे साथ मिलते जुलते थे। वे वृद्ध होकर भी वर्तमान समाजसुधारको प्रायः पसंद करते थे। बस, फिर क्या था? मेरा दिल दूना होगया और माँका मरणभोज नहीं होने दिया।

उधर ललितपुरकी विचारशील पंचायतने भी यह प्रस्ताव कर लिया कि ४० वर्षसे कम आयुवालेका मरणभोज न किया जाय। इस सभामें हमारे नगर (ललितपुर) के मुखिया श्री० सेठ पन्ना-लालजी टड़ैयाने बड़ा ही प्रभावक भाषण दिया और साफ साफ कह दिया कि मरणभोजकी प्रथा धार्मिक नहीं है, किन्तु समाजपर यह एक भारी बोझ है। अपने बुजुर्गोंकी सभी बातोंका अनुकरण नहीं करना चाहिये। हमें कुछ विवेकसे भी तो काम लेना चाहिये। कमसे कम ४० वर्षके नीचेका मरणभोज नहीं किया जाय। और ४० वर्षसे ऊपर भी यथाशक्ति कुटुम्बियोंकी इच्छापर रक्खा जाय। इसी विषयपर अनेक भाषण हुये थे और श्री० टड़ैयाजीके कथनानुसार प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे पास होगया था।

इस प्रस्तावका ललितपुरमें अधिकांश पालन हुआ, किन्तु ४० वर्षसे ऊपरकी उम्रके भोज बन्द नहीं हुये। लेकिन अब कुछ वर्ष

अक्टूबर १९३६ को हमारे पिताजीका स्वर्गवास हुआ तब हमारे ऊपर कई लोगोंने दबाव डाला कि वृद्धपुरुषका तो मरणभोज करना ही चाहिये। किन्तु मैं युवा या वृद्धके मरणभोजको ही नहीं, मरणभोज मात्रको अमानुषिक भोज मानता हूं। इसलिये मैंने तो सबसे साफ इंकार कर दिया। और मरणभोज नहीं होने दिया। दैवयोगसे ललितपुरमें कुछ भाई मेरे अनुकूल भी थे और कुछ मध्यस्थ भी रहे। आखिरकार मरणभोज नहीं हुआ और यह चर्चा गांवमें बहुत दिन तक चलती रही।

कहनेका तात्पर्य यह है कि जबतक खूब डटकर मरणभोज विरोधी प्रचार नहीं होगा तबतक यह मरणभोजकी प्रथा नहीं मिट सकती। मनुष्योंकी परम्परागत भावनाका मिट जाना सरल नहीं है। प्रस्ताव, प्रचार और अनेक उपाय होनेपर भी लोगोंकी रूढ़ि नहीं बदलने पाती। वे तत्काल प्रभावित भले हो जायं मगर समय आनेपर फिर वैसेके तैसे होजाते हैं। जिसके घर मृत्यु होजाती है वह दृढ़तापूर्वक डटा रहे तथा चारों तरफके विविध आक्रमणों एवं लोगोंकी टीका टिप्पणियोंको सहता रहे, यह सरल कार्य नहीं है।

हमारे पिताजीकी आयु करीब ६० वर्षकी थी, इसलिये कुछ लोग तो मुझसे अधिकारपूर्वक कहते थे कि तुम्हारे बापकी मृत्यु तो वृद्धावस्थामें हुई है और तुम दोनों भाई कमाते हो, फिर लोभ किस बातका? कोई कहता था कि भाई! तुम्हें ऐसी प्रथा पहले अपने घरसे प्रारम्भ नहीं करनी चाहिये। कोई हितैषीके रूपमें कहता कि बड़े रूपमें नहीं तो साधारण तौरपर ही करदो। इतना ही नहीं,

किन्तु कुटुम्बीजन तो मुझे खूब भला बुरा कहने में और कई तरहसे मुझे शर्मिंदा करते थे। कुछ विवेकी सज्जन मुझे इस विरोधमें भी टिके रहनेके लिये प्रोत्साहित करते रहते थे।

तात्पर्य यह है कि मैं स्वानुभवसे इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि यदि कोई व्यक्ति मरणभोज न करना चाहे तो उसे इस तरह शर्मिन्दा किया जाता है कि उसका टिका रहना असम्भव सा होजाता है। इसलिये मैं समझता हूं कि ४० या कम वर्षकी कोई मर्यादा न रखकर मरणभोज मात्र बन्द कर दिया जाय, चाहे वह जवानका हो या बूढ़ेका। जैनसमाजपर लदे हुये इस भयानक पापको कलंकको मिटानेका प्रत्येक युवक और संस्थाओंका कार्य है।

परिषद्का प्रयत्न।

हमारी तमाम जैन संस्थाओंमेंसे भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद्ने मरणभोजके विरुद्ध सबसे अधिक आन्दोलन किया है। उसके अनेक अधिवेशनोंमें मरणभोज विरोधी प्रस्ताव होते रहे हैं। समाजपर इस आन्दोलनका यत्किंचित् प्रभाव भी पड़ा है। किन्तु सतनाके गत १२ वें अधिवेशनमें इस अमानुषिक प्रथाके विरुद्ध जो भारी कार्य हुआ था वह समाजके सामने अतिस्पष्ट रूपमें है। मैंने दूसरे दिन (ता० १२-४-३५) की बैठकमें इसप्रकार प्रस्ताव रखा था:—

"मरणभोजकी प्रथा जैनधर्म और जैनत्वके सर्वथा विरुद्ध तथा जन धन एवं आवश्यकताओंकी शोषक है, इसलिये यह परिषद् पुनः प्रस्ताव करती है कि इस घातक प्रथाको शीघ्र बंद कर दिया

जाय। और समाजसे अनुरोध करती है कि वह किसी भी आयुके स्त्री पुरुषका मरणभोज न करे और ऐसे घातक कार्यमें कतई भाग न ले। साथ ही मरणोपलक्षमें भाजी व लान न बांटे।"

इस प्रस्तावके विवेचनमें मैंने अनेक करुणाजनक सच्ची घटनायें पेश कीं और इस अत्याचारपूर्ण प्रथाके विनाशके लिये जनतासे अपील की। घटनाओंको सुनकर श्रोताओंका हृदय कांप उठा। जिसका परिणाम यह हुआ कि करीब एक हजार स्त्री पुरुषोंने उसी समय मरणभोज त्यागकी प्रतिज्ञा करली। मेरे प्रस्तावके समर्थनमें श्री० चिरंजीलालजी मुंसिफ अलवर, सेठ पद्मराजजी जैन रानीवाले कलकत्ता, पं० अर्जुनलालजी सेठी आदि अनेक विद्वान नेताओंने भाषण दिये थे।

श्री० सेठ पद्मराजजी जैन रानीवालोंने कहा—यह कितने दुःखकी बात है कि आज इस युगमें भी जैनोंमें मरणभोजकी अमानुषी प्रथा प्रचलित है। आजसे १५ वर्ष पूर्व मैंने अपने मित्र समूह सहित इसपर खूब विचार किया और कार्यवाही की थी। किन्तु अभीतक यह प्रथा बन्द नहीं हुई। समाज सुधार छिपनेसे नहीं होगा। स्पष्ट कहिये कि हमारे समाज सुधारमें बाधक कौन हैं? उत्तरमें कहना होगा कि वे पंच नामधारी पुतले ही बाधक हैं जिनके दुश्चरित्रोंका नाम तक लेते नहीं बनता। हमें उनकी परवाह न करके साहसपूर्वक आगे बढ़ना चाहिये। और इन समाजघातनी प्रथाओंका शीघ्र ही विनाश करना चाहिये।

श्री० पं० अर्जुनलालजी सेठीने कहा—अभी परमे-

श्रीवासने नरकोंका वर्णन (मरणभोजकी करुणाजनक मिठाई) सुनाया है। पंचोंने यह नरक कहानी तैयार की है। इसलिये तुम इन नारकियोंमें शामिल मत होना और मरणभोजकी प्रथाका जल्दी ही मुंह काला करना।

इसी प्रकार कई विद्वानोंने अपने उद्गार प्रगट किये। जिसका प्रभाव यह हुआ कि उसी समय करीब १०० अग्रगण्य स्त्री पुरुषोंने तो स्टेजपर आकर विवेचन किया और प्रतिज्ञायें कीं कि अब हम मरणभोजमें कतई भाग नहीं लेंगे। सेठ परमसुखलालजी और दयाचंदजी सतनाने घोषणा की कि हमारे सतना नगरमें किसी भी जैनका मरणभोज नहीं होगा। सेठ धरमदासजीने अपनी माताका मरणभोज न करनेकी प्रतिज्ञा की और १५०) परिषदको दान दिये। अनेक नगरोंके वृद्ध तथा युवकोंने प्रतिज्ञायें कीं कि हमारे यहां अब मरणभोज नहीं होगा। करीब १००० स्त्री पुरुषोंने मरणभोज विरोधी प्रतिज्ञापत्रोंपर अपने हस्ताक्षर किये, जो इसप्रकार है:—

"मुझे विश्वास होगया है कि मरणभोजकी प्रथा जैन धर्म और जैनाचारके सर्वथा विरुद्ध तथा अनावश्यक एवं अनर्थकार्योंकी पोषक है। इसलिये मैं प्रतिज्ञा करता(ती) हूं कि अब मैं कभी किसी भी आयुवालों (स्त्री या पुरुष) के मरणभोजमें भाग नहीं लूंगा (गी) और मेरा सर्वदा यह प्रयत्न रहेगा कि हमारे यहांकी पंचायतमें भी मरणभोज बन्द कर दिया जाय तथा इस घृणित प्रथाका सर्वथा नाश होजाय।"

परिषदके बाद भी यह "प्रतिज्ञापत्र" हजारोंकी संख्यामें भरे

गये हैं। आज भी लोग उन्हें मंगाकर भरकर भेजते हैं। अभी भी जो व्यक्ति, युवकसंघ या संस्थायें यह कार्य कर सकें वे "लाला तनसुखरायजी जैन मंत्री दि० जैन परिषद्—देहली" से यह फार्म मंगालें या स्वयं अपने हाथोंसे लिखकर उनपर लोगोंके दस्तखत करावें। प्रयत्न करने पर इस डायनी प्रथाका अवश्य ही विनाश हो जायगा।

पुरुषोंकी भांति विवेकशील स्त्रियां भी इस भयंकर प्रथाका नाश चाहती हैं। सतना परिषदके समय श्रीमती लेखवतीजी जैनकी अध्यक्षतामें **'महिला सम्मेलन'** भी हुआ था। उसमें करीब १००० बहिनें उपस्थित थीं। उसमें भी मैंने करीब १५ मिनिट मरणभोज विरोधी भाषण दिया था। जिसके फलस्वरूप सभी बहिनोंने मरणभोजमें सम्मिलित न होनेकी प्रतिज्ञा की थी। उस समय **श्रीमती लेखवतीजीने** बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें कहा:—

"पण्डितजी तो आपसे मरणभोजमें भाग न लेनेकी बात कहते हैं, किन्तु मैंतो कहती हूं कि जहां मरणभोज होता हो वहां आप सत्याग्रह करें, दर्वाजे पर लेट जावें और किसीको भी भीतर न जाने दें। फिर भी जिन निष्ठुर पुरुषोंको मरणभोजमें जाना होगा वे भले ही तुम्हारी छाती पर लात रखकर चले जावें। हमें इस निर्दयतापूर्ण प्रथाका शीघ्र ही विनाश कर देना चाहिये।"

इस भाषणका स्त्री पुरुषों पर काफी प्रभाव पड़ा। यदि इसी प्रकार मरणभोज विरोधी आन्दोलन चालू रहे तो एक वर्षमें ही समस्त जैन समाजसे इस प्रथाका नाम निशान मिट जाय। कई

अस्थिशेष, जिसे कि यहां 'सारी' कहते हैं, उठानेके लिए कुछ लोग चितापर जाते हैं और उसे बटोरकर आमतौरसे किसी पासके जलाशयमें छोड़ आते हैं; परन्तु जो लोग समर्थ होते हैं वे पवित्र गंगाजलमें छोड़नेके लिए ले जाते हैं, और प्रयाग पहुंचकर पंडोंको दान-दक्षिणा भी यथाशक्ति देते हैं। शामको घीका दीपक लेजाकर चिताभूमिपर जला आते हैं। यह प्रतिदिन तबतक जलाया जाता है, जब तक कि दिन-तेरहीं नहीं होजाती है। श्मशान—भूमिके निर्जन अन्धकारमें मृतव्यक्तिके लिए प्रकाशकी व्यवस्था कर देना ही शायद इसका उद्देश्य है। 'सारी' उठ चुकनेपर जितने कुटुम्ब—परिवारके लोग होते हैं उन्हें भोजन कराया जाता है। इसके बाद तेरहवें दिन मृत श्राद्ध किया जाता है, जो सर्वपरिचित है और जिसमें जातिके पंचोंके सिवाय दूसरी जातिके उन व्यक्तियोंको भी खूब खर्चीला भोज दिया जाता है, जो दाह—क्रियामें 'लकड़ी' देने जाते हैं।

यह तो इतना आवश्यक है कि गरीबसे गरीब अनाथ विधवायें भी इस खर्चसे छुटकारा नहीं पा सकतीं—कर्ज काढ़कर भी उन्हें यह करना पड़ता है। इसके बाद छःमासी (षाण्मासिक श्राद्ध) और बरसी (वार्षिक श्राद्ध) भी की जाती है; परन्तु ये सर्वसाधारणके लिए आवश्यक नहीं हैं, धनी मानी ही इन्हें करते हैं। फिर भी नामवरीके लोभमें दूसरोंके द्वारा पानी चढ़ाये जानेपर असमर्थ भी बहुधा कर डाला करते हैं। स्वयं मेरे सालेकी मृत्यु पर, जो बहुतही गरीब थे, उनकी पत्नीने तीनों श्राद्ध करके अपना जन्म सार्थक किया है। इन तीनों श्राद्धोंसे तो मैं परिचित था; परन्तु अबकी बार यह

भी पता लगा कि बहुतसे धनी तीन वर्षके बाद पितरोंमें भी मिलाये जाते हैं। अर्थात् तीसरी मृत्यु-तिथिको भोज होजानेके बाद वे पितृजनोंकी पंक्तिमें शामिल कर लिये जाते हैं—वहां परलोकमें 'अपांक्तेय' नहीं रहते हैं। मालूम नहीं 'पितरोंमें मिलाने'का उनका वास्तविक अर्थ हमारे जैनी भाई समझते हैं या नहीं; परन्तु वे अपने पुरखोंको इस अधिकारपर आरूढ़ जरूर किया करते हैं, यद्यपि पिंड-दान नहीं करते।

इस तरफके जैनोंमें 'पितृ-पक्ष' भी पाला जाता है। कुंवार वदीके १५ दिनोंमें औरोंके समान ये भी अपने पुरखोंके नामपर पकवान सेवन करनेसे नहीं चूकते। माता, पिता, पितामह, मातामह आदिकी मृत्यु-तिथियोंके दिन जिन्हें 'तिथि' ही कहते हैं, स्त्रियां पहले उनके नामपर कुछ पकवान वगैरहमेंसे निकालकर अलग रख देती हैं, जिसे 'अगूता' कहते हैं और वह गौओंको देती हैं। यह 'अगूता' पितृपिंडका ही पर्यायवाची जान पड़ता है।

इस तरह यह जैनसमाज भी इस विषयमें वेदानुयायी ही है; फर्क केवल इतना ही है कि इसने ब्राह्मणों और उनके क्रियाओं या आहुतियोंको अलग कर दिया है, और अपनी बुद्धिसे पुरखोंके साथ गौका सम्बन्ध जोड़ दिया है। मालूम नहीं, इस शास्त्रविहित श्राद्धसे उन्हें तृप्ति होती है या नहीं!

हमारा यह सब व्यवहार इस बातका प्रमाण है कि कोई भी समाज हो, वह अपने पड़ौसियोंके आचार-विचारोंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता, और साधारण जनता सत्य और सिद्धान्तोंकी

चारीकियोंको उतना नहीं समझती जितना बाहरी आचार-विचारोंको। इसीलिए कहा गया है कि "गतानुगतिको लोकः न लोकः पारमार्थिकः।"

इस विषयमें एक बात और लिखनेसे रह गई। मैं एक देहातमें था। वहां तड़बन्दी थी। कूटनीतिज्ञ मुखियोंकी कृपासे वहांके एक ही कुटुम्बके दो घर दो तड़ोंमें विभक्त हो रहे थे। दैवयोगसे एक घरमें एक व्यक्तिकी मृत्यु होगई और नियमानुसार उसे तेरहीं करनी पड़ी; परन्तु चूंकि दूसरी तड़वाला घर उस मृत्युभोजमें शामिल न होसका, अतएव वह शुद्ध न होसका—उसका सूतक (पातक?) न उतरा और तब उसे लाचार होकर जुदा मृतक-भोज देना पड़ा। बहुत समझानेपर भी पंच-सरदार न माने। यह बात उनकी समझमें ही न आई कि एक कुल-गोत्रवाला वह दूसरा घर विना श्राद्ध किये कैसे शुद्ध हो सकता। सो कहीं कहीं एकके मरनेपर दो दो तीन तीन तक श्राद्ध करने पड़ते हैं। बहुतसे गांवोंमें यह हाल है कि यदि कोई मृतश्राद्ध न करे, बिरादरीवालों, 'लकड़ी' देनेवालों और कमीनोंको भोजन न दे, तो उसे सार्वजनिक कुओंपर पानी नहीं भरने देते हैं, वह एक तरहसे अस्पृश्य होजाता है।

आमतौरसे यह भी रिवाज़ है कि जिसके यहां मृत्यु होजाती है, उस घरके लोग तेरहीं होजाने तक मंदिर नहीं जाते हैं। मृत्युभोजके दिन भोजनोपरांत घरके मुखियाको पंचजन पगड़ी बांधकर जिनदर्शनको लिवा जाते हैं, और इसके बाद उसे मंदिर जानेकी

खड़ी होकर छाती कूटना पड़ती है। फिर उसके सौभाग्यचिह्न अलग किये जाते हैं। फिर विधवाको १४ माहतक घरसे बाहर नहीं निकलने दिया जाता। शौचादि मकानमें ही करना पड़ता है। कुटुंबी तथा सम्बंधीजन १२ दिन तक उसीके घरपर भोजन करते हैं, फिर तेरहवें दिन खांदिया करते हैं, उसमें सैकड़ों आदमी जीमनेके लिये आते हैं। इसके बाद तेरई तो अलग करना ही पड़ती है। जो तेरहवें दिन मरणभोज नहीं देपाता वह लोगोंकी निगाहोंमें गिर जाता है, फिर भी उसे महीनों या वर्षोंके बाद ही सही मरणभोज तो देना ही पड़ता है। साथ ही 'लान' वर्तनादि बांटनेका भी रिवाज है। तात्पर्य यह है कि मरणभोज और उसकी क्रियाओंके पीछे अच्छे२ घर भी बर्बाद होजाते हैं, तब गरीब घरोंकी तो पूछना ही क्या है ?

मालवा प्रान्तमें–भी इन्हींसे मिलते जुलते रिवाज हैं। यहां वर्षों बाद भी मरणभोज किये जाते हैं और हजारों रुपयोंकी 'लान' बांटी जाती है। मिथ्यात्वका रिवाज भी खूब है। मालवा और मारवाड़ प्रांतमें कहीं२ ब्राह्मणोंको जिमानेका भी रिवाज है। इसके बिना शुद्धि ही नहीं मानी जाती।

गुजरात प्रान्तमें–मरणोत्तर रिवाज कुछ और ही प्रकारके हैं। यहांपर जब किसीकी मृत्यु होती है तब घर कुटुम्ब और मुहल्लाकी तथा तमाम व्यवहारी स्त्रियां आकर इकट्ठी होती हैं और मकानके बाहर सड़कपर सब एक गोल घेरेमें खड़ी होजाती हैं तथा बीचमें विधवा स्त्री खड़ी रहती है। फिर एक गानचतुर स्त्री 'राजिया' गाती

है जिसे सब स्त्रियां मिलकर तालबद्ध "राजिया" गाती हैं और मकार लगाती रहती हैं। गानेके साथ ही साथ वे सब स्त्रियां अपने दोनों हाथोंसे छाती ठोकती (छाजिया लेती) जाती हैं। इनमें जो मृतव्यक्तिकी विधवा या निकट संबंधिनी स्त्रियां होती हैं वे तो इतने जोरसे छाती ठोकती हैं कि उनकी छाती सूज जाती है। किसीके तो खून भी निकलने लगता है। कुछ दिन हुये इसी प्रकार छाती कूटते कूटते शिकारपुरमें एक नवीन पत्नीका मरण होगया था।

यह छातीका कूटना और 'राजिया' गाना मात्र घरके दर्वाजे पर ही नहीं होता, किन्तु चौराहे पर और आम मार्गमें आकर भी इसी प्रकार निर्दयता पूर्वक छाती कूटी जाती है। जो जितने जोरसे छाती कूटती है वह उतनी ही अधिक दर्दमन्द मानी जाती है। यदि सच पूछा जाय तो गुजरातकी प्रचलित कुप्रथाओंमें यह सबसे भयंकर एवं दयाजनक प्रथा है। यह शीघ्र ही बन्द होनेकी आवश्यकता है। इस सुधरे हुये भारतमें इस कुत्सितपूर्ण प्रथाको देख कर बड़ा आश्चर्य और दुःखका ठिकाना नहीं है। इस प्रकार रोने, छाती कूटने और राजिया गानेका क्रम बहुत दिनों तक जारी रहता है। जब जब बाहरसे स्त्रियां मिलने या बैठने अथवा रोने [?] आती हैं तब तब यही विधि करना पड़ती है। न जाने गुजरातकी यह कलंकमय प्रथा कब मिटेगी!

इसमें मृतव्यक्तिकी [illegible] एक [illegible] है, जिसे [illegible] दिन [illegible] नहीं होता। इसको [illegible]

पहुंचने पर विश्रान्ति स्थान (जो खास इसीलिये बनाया गया है) में ठहरते हैं। वहां पर मृतव्यक्तिके घरके लोग बिड़ी पान सुपारीका प्रबंध करते हैं और अधिकांश लोग खाते हैं। फिर स्मशानमें जाकर मुर्दा जलाया जाता है। उधर मुर्दा जलता है और इधर स्मशानमें जानेवाले लोग मृतव्यक्तिकी ओरसे चाय बिड़ी पीते हैं और ताश आदि खेलते हैं। और कभीर तो नहानेके पूर्व मीठाई तक उड़ाई जाती है।

मरणभोजसे भी भयंकर इस प्रथाको देखकर किसे आश्चर्य न होगा ? बिचारे मरनेवालेके घरवालोंको मुर्देके साथ ही साथ मिठाई आदिका भी प्रबंध करना पड़ता है जो स्मशानमें लेजाई जाती है और मानों मुर्देकी छातीपर बैठकर खाई जाती है। यह भी मरण-भोजका एक भयंकर प्रकार है। अब तो कई जैनोंमें मिठाई खानेकी प्रथा बन्द होरही है, फिर भी कुछ जैनोंमें यह प्रथा चालू है। मुझे स्वयं ३—४ बार स्मशान जाना पड़ा और मैंने जब यहांके लोगोंकी इस अमानुषी प्रथाको देखा तब मेरा हृदय घृणासे भर आया। कुछ लोगोंसे इसके विरोधमें कहा भी किन्तु जिस प्रकार मरणभोजिया लोग अपना हठ नहीं छोड़ सकते वैसे यह लोग भी क्यों छोड़ने लगे ? हाँ, यदि किसीकी समझमें आगया तो मिठाई न खाकर मात्र चाय पीकर ही संतोष करते हैं। यह है मरणभोजका दूसरा भयंकर चित्र।

स्मशानके बाद गुजरातके जैनोंमें एक ही मरणभोज नहीं होता, किन्तु ग्यारवाँ, (११ वें दिन) बारवाँ (१२ वें दिन) और तेरवाँ

(१३ वें दिन) भी होता है। इतना ही नहीं किन्तु कहीं कहीं तो ४–५ दिन तक मरणभोज किया जाता था। इस प्रकार मृत व्यक्तिके घरकी बरबादी कर दी जाती है। सूरतमें भी ३–४ दिन तक जीमनेका रिवाज था, मगर अब धीरे धीरे वह बन्द हो गया है। और अब तो मात्र एक ही दिन मरणभोज देनेकी प्रथा रही है। वह भी अब लगभग मिट गई है। अब यहांके लोग बारहवां तेरहवां आदि कुछ नहीं करते। किन्तु कोई कोई पूजा पाठ कराके उसके बहानेसे धर्मभोज देते हैं, जो लगभग मरणभोजका ही रूपान्तर है। किन्तु गुजरातके ग्रामोंमें तो अभी भी मरणभोजकी प्रथा ज्योंकी त्यों चालू है।

काठियावाड़ प्रांतमें—भी गुजरातकी भांति ही छाती कूटने, राजिया गाने, और बारहवां तथा तेरहवां करनेका रिवाज है। वहां भी जैनाचारहीन क्रियाकाण्ड किये जाते हैं और निःसंकोच मरणभोज किया जाता है।

इस तरह मरणभोजके प्रान्तीय और जातीय रिवाज विविध प्रकारसे पाये जाते हैं। किसीमें मिथ्यात्वका असर है तो कोई महामिथ्यात्वरूप है और कोई अत्याचार, दबाव, लज्जा, या जाति-भयके कारण किया जाता है तथा किसीमें मात्र गतानुगतिकता या नामवरी ही कारण होती है। पूर्व लिखित प्रकरणोंसे पाठक भली भांति समझ गये होंगे कि जैन समाजमें मरणभोजकी प्रथाने घर करके उसे कितना बर्बाद कर दिया है। फिर भी हमारी जातीय पंचायतें इसे अभी भी जड़मूलसे नाश करनेका साहस नहीं करतीं।

यह प्रथा किसी न किसी रूपमें अनेक प्रांत और वहांकी जातियोंमें पाई जाती है ।

नागपुरके एक सज्जनने लिखा है कि इस प्रान्तमें १-बघेरवाल जातिमें मरणभोज करना अत्यावश्यक न होनेपर भी कई लोग गृहशुद्धिके लिये करते हैं । २-खण्डेलवाल जातिमें तो मरण-भोजकी प्रथा खूब जोरोंसे प्रचलित है । ३-परवार जातिमें भी इस प्रथाका अर्धरूप पाया जाता है । ४-पद्मावती पुरवाल जातिमें यह प्रथा अभीतक चालू है । प्रायः वे लोग १३ वें दिन भोजन कराके तेरहवीं करते हैं । ५-सैतवाल जातिमें यह प्रथा पद्मावती पोरवालोंकी भांति ही प्रचलित है। खंडेलवालोंमें ला० रतनलालजी बाकलीवालने अपनी माताका मरणभोज न करके १२५) दान किये । यह उनका सर्व प्रथम साहस है ।

एक न्यायतीर्थजीने ग्रामानुसार अपना अनुभव लिखकर भेजा है कि १-**बिल्सी** (बदायूँ) में समझाने बुझानेपर मरणभोज बंदीका प्रस्ताव तो कराया गया, फिर भी वहांके कई जैन तेरहवें दिन कमसेकम १२ ब्राह्मणोंको भोजन करा देना अभी भी आव-श्यक समझते हैं । २-**खुरई**-(सागर) में न्यायाचार्य पं० गणेश-प्रसादजी वर्णीके प्रयत्नसे बालक और युवकोंका मरणभोजसे बंद होगया है । इसका अर्थ यह है कि जैनसमाजके सर्वमान्य पूज्य विद्वान न्यायाचार्यजी भी मरणभोजको धर्मसंगत, आवश्यक, शुद्धिका जाडू या श्रावककी क्रिया नहीं मानते । अन्यथा वे अमुक आयुके स्त्री-पुरुषोंका मरणभोज कैसे बंद कराते ? इस लिये जब युवकोंके

मरणकी अशुद्धि योंही दूर होजाती है तब सभी आयुके मरणकी अशुद्धि भी स्वयमेव दूर हो ही जायगी। अतः मरणभोज सर्वथा बंद कर देना चाहिये।

३—भोपालमें भा० दि० जैन परिषद्के प्रयत्नसे प्रायः मरणभोज बन्द होगया है। सेठ गोकुलचन्दजी पंड्याने अपनी पत्नीका मरणभोज न करके ७०००) दान देकर जैन कन्या पाठ-शाला स्थापित की है। इसी प्रकार सेठ सुन्दरलालजीने अपनी माताजीका मरणभोज न करके विमानोत्सव किया और विद्वानोंको एकत्रित करके भाषण कराये थे। यह है आदर्श कार्य।

एक सज्जन लिखते हैं कि तलवाड़ा (डूंगरपुर) में तथा सारे बागड़ प्रान्तमें मरणभोजकी भयंकर प्रथा चालू है। प्रत्येक परि-णीत व्यक्तिका (चाहे वह १५–२० वर्षका भी हो) मरणभोज किया जाता है। पंचोंका यह कानून अटल है। यदि शक्ति व सुविधा न हो तो मास, दो मास, वर्ष दो वर्ष या कई वर्ष बाद भी पंच लोग मरणभोज लेकर ही छोड़ते हैं।

खांपुरकलांके एक सज्जन लिखते हैं कि वहांपर मरनेके तीसरे ही दिन कुटुम्बियोंको हलवा, पूड़ी और चने खिलाये जाते हैं। पन्द्रह वर्षसे ऊपरके सभी स्त्री पुरुषोंका मरणभोज किया जाता है। वहां यह आवश्यक कार्य समझा जाता है। यदि कोई न करे तो लोग उसे बुरी नजरसे देखते हैं और ताना देते हैं। ग्यारह दिनके बाद मरणभोज करना पड़ता है। [illegible] [illegible] [illegible] जाते हैं और समधी स्त्रियोंको रुपयोंकी सहायता दी जाती है।

मरणभोजके समर्थकोंको विचारना चाहिये कि १५ वर्षके लड़का लड़कियोंका भी मरणभोज खानेवाले कितने निष्ठुर हृदय होंगे। जहां मरणोपलक्षमें पहरावनी बांटी जाती है वहां मानवताका कितना अधःपतन होचुका है। **मारवाड़ प्रान्तके** एक न्यायतीर्थ विद्वान लिखते हैं कि हमारे नगरमें तो ९ वें या १३ वें दिन मरणभोज होता है और प्रत्येक जातीय घरमें एक एक रुपया तथा मिठाई भेजना पड़ती है। यदि कोई ८ वें या १३ वें दिन मरणभोज न कर सका हो तो विवाहके समय पितरोंके उपलक्षमें मरणभोज करना ही पड़ता है। पाठक देखेंगे कि मरणभोजके नामपर रुपया और मिठाई आदि बांटकर अत्याचारको और भी कितना अधिक बढ़ाया जाता है।

एक सुप्रसिद्ध वैद्यराजजीने अपने अनुभव लिखे हैं कि मैंने पंजाब, राजपूताना, मालवा, मेवाड़, यू० पी० और सी० पी० आदिमें रहकर देखा है कि वहां किसी न किसी रूपमें मरणभोजकी प्रथा प्रचलित है। अजमेर, उदयपुर, सुजानगढ़, इन्दौर और पछार आदिमें तो कान (वर्तन) भी बांटी जाती है। **सुजानगढ़में** जैनोंके अतिरिक्त ब्राह्मणोंको अलग भोज कराया जाता है। इसके अलावा तिमासी, छहमासी और वर्षी भी की जाती है।

मुर्दे पर मिठाइयाँ खाना—रावलपिण्डी शहरमें करीब २५० घर श्वेताम्बर जैनोंके हैं। वहां पर पहले इतनी भयंकर प्रथा थी कि किसीके घरमें मृत्यु होगई हो तो उसके घरपर पंचलोग इकट्ठे होकर पहिले मिठाइयां उड़ाते थे और मुर्दा वहीं रक्खा रहता था। मिठाई खानेके बाद वह मुर्दा स्मशान लेजाया जाता था। देखिये, है न

करुणाजनक सच्ची घटनायें।

मरणभोजकी प्रथा कितनी भयंकर है, कितनी पैशाचिक है और कितनी समाजघातिनी है यह बात आगे दी जानेवाली सच्ची घटनाओंसे स्वयं ज्ञात होजायगी। यहां जो घटनायें लिखी जारही हैं उनमें एक भी कल्पित या अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है, फिर भी उनमें किसीका नाम आदि न देनेका कारण इतना ही है कि इन घटनाओंसे संबंधित व्यक्ति ऐसे पापकृत्य करके भी अपनेको अपमानित हुआ नहीं देखना चाहते।

मैं समझता हूँ कि किसीका नाम आदि न देनेसे घटनाओंकी वास्तविकता नष्ट नहीं हो सकती, और जिन्हें विश्वास न हो उन्हें कमसे कम इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि मरणभोजके परिणाम स्वरूप ऐसी घटनायें होना असंभव नहीं हैं। इन घटनाओंके प्रेषक जैन समाजके सुप्रसिद्ध विद्वान और श्रीमान हैं। मैं उन सबका आभारी हूँ। अब तनिक उन 'करुणाजनक सच्ची घटनाओं' को हृदय थाम कर पढ़िये।

१–अफीम खाकर मर जाना पड़ा–पन्ना स्टेटके एक ग्राममें एक परवार जैन सिंघई थे। उनकी समाजमें अच्छी प्रतिष्ठा थी। उनने कई बड़े २ कार्य किये थे। किन्तु दैवयोगसे गरीबी आगई। उधर उनकी पत्नी मर गई। मरणभोज करनेकी सिंघईजीके पास सुविधा नहीं थी। इसलिये इज्जत बचानेके लिये उनने अफीम खाली और उन्हें मृत्युभोजकी वेदीपर स्वयं मृत्युका भोज बनना पड़ा।

२–पीस कूटकर गुजर करती हैं–दर्जनके पास एक

नगरमें जैन युवक २५) की नौकरी करता था। उसके घरमें माता, पत्नी, पुत्र और स्वयं, इस प्रकार चार व्यक्ति थे। वह जैसे तैसे अपनी गुजर चलाता था। दैवयोगसे उसकी नौकरी छूट गई। उसे चिन्ताने आघेरा, किसीने कोई सहायता न की। आखिर वह चिन्ताकी चितामें जल मरा। पंचोंने उसकी पत्नी और मातासे मरणभोज करनेके लिये आग्रह किया। उनने अपनी अशक्ति बताई। तब लोगोंने उन्हें बिरादरीसे अलग कर देनेकी धमकी दी। इस भयंकर धमकीसे डरकर उनने अपने हाथ पैरके जेवर बेचकर पंचोंको लड्डू खिला दिये। और अब वे दूसरोंकी रोटी करके तथा पीस कूटकर अपनी गुजर चलाती हैं।

२—कन्याको बेचकर मरणभोज किया—डुंगावलीसे १० मीलकी दूरीपर एक ग्राम है। वहांकी यह सन् १९३३ की रोमांचकारी घटना है। वहां एक जैन हलवाईकी मृत्यु हुई। पंचोंने उसकी स्त्री और लड़केसे तेरई करनेके लिये आग्रह किया। किन्तु उनने अपनी साफ अशक्ति प्रगट की। और कहा कि हमारे पास कफन लानेको भी नहीं है। पंचोंने उनकी बहिष्कारकी तोप चढ़ाई और हलवाईके लड़केको पंचायतमें बुलाकर उसके सामने खड़ा कर कहा कि या तो अपने बापकी तेरई करो या फिर कलसे तुम लोगोंका बहिष्कार है। इस अत्याचारको देखकर वहांकी पाठशालाके पण्डितजीने विरोध किया, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें नौकरीसे हाथ धोना पड़े। इधर पंचोंमेंसे एक सज्जन (!) ने लड़केको एकान्तमें बुलाकर कहा कि तुम्हारी बहिन विवाहयोग्य है, उसकी सगाई कुछ ले देकर

करलो उसमें जो रुपया आवे उससे तेरई और विवाह दोनों होजावेंगे।

जाति बहिष्कारके भयसे लड़का और उसकी मांने यह स्वीकार कर लिया। दलालोंने प्रयत्न करके दमोहके पास एक ग्राममें एक ४५ वर्षके जैनके साथ लड़कीकी सगाई करा दी। १२००) तय हुये। ५००) पेशगी लिये। उनसे खूब डटकर तेरई की गई। १५-२० गांवसे आसपासके व्यवहारी जन भी आये और खूब चकाचक उड़ी। चैत्र सुदी ३को उस लड़कीका विवाह होगया। वर महाशयका यह तीसरा विवाह था। वे एक वर्ष बाद ही स्वर्ग सिधार गये। और उस १६ वर्षीया लड़कीको विधवा बना गये। आज वह मरणभोजिया पंचोंके नाम पर आँसू बहा रही है।

४-कुल्हाड़ीसे मारडाले गयेका भी मरणभोज-ललितपुरके पास एक ग्राममें किसी विद्वेषीने एक जैनको कुल्हाड़ी मारी, जिससे वह मर गया और मारनेवालेको फांसी हुई। फिर भी कुल्हाड़ीसे मरे हुये व्यक्तिके घरवालोंको मरणभोज करना पड़ा और उसमें गांवके तथा आसपासके ग्रामोंके जैनी भी शामिल हुये थे।

५-गहने बेचकर मरणभोज किया-जयपुर स्टेटके एक ग्राममें ३० वर्षीय युवक बीमार हुआ। घरमें पत्नी और एक छोटा लड़का था। दरिद्रताके कारण इलाज कराना अशक्य होगया। वैद्यने मुफ्तमें इलाज करनेसे साफ इंकार कर दिया। तब उसकी पत्नीने अपने हाथका गहना गिरवी रखकर वैद्यको ४०) दिये। इलाज होनेपर भी युवककी मृत्यु होगई। तब उस दयालु वैद्यने के

४०) वापिस दे दिये । तीसरे दिन पंच लोग उस लड़केके घर एकत्रित हुये और विधवासे मरणभोजके लिये आग्रह किया । उसके हजार इंकार करनेपर भी बहादुर पंचोंने उस गरीब विधवासे नुक्ता करवा ही डाला । इस नुक्तेने उस विधवा और उसके बच्चों को विपत्ति ला पटकी उसकी कहानी अत्यन्त मार्मिक वेदना उत्पन्न करनेवाली है ।

६-बारह वर्ष बाद भी नुक्ता करना पड़ा—जबलपुरके पास एक ग्राममें एक कुटुम्बहीन व्यक्ति था । उसके मां-बापको मरे करीब १५ वर्ष होचुके थे । फिर भी पंचोंने उसका पीछा न छोड़ा । वह बिचारा गरीब नौकर था । १५-२० वर्षमें वह २००) एकत्रित कर सका था । लोगोंके आग्रहसे उसने एक महाजनसे ब्याज पर २००) लिये और २००) अपनी २० वर्षकी कमाईके मिलाकर मां-बापका पुराना उधार मरणभोज कर डाला । पंच लोग लड्डू उड़ाकर चले गये । आज वह युवक कर्जमें फंसा है और भरपेट भोजन तक नहीं पाता । ऐसी स्थितिमें लड्डू खानेवाले पंचोंमेंसे अब कोई उसकी खबर नहीं लेता ।

७-अठारह वर्षका भी मरणभोज—जबलपुरमें एक ग्राममें एक अठारह वर्षके युवककी मृत्यु हुई । फिर भी पंचोंने उसका मरणभोज कराया । उसकी १५ वर्षीय विधवा रुदन-विलाप कर रही थी और निर्दयी पंच लड्डू गटक रहे थे । यह है हमारी अहिंसाका एक नमूना !

८-मुर्देकी छातीपर मरणभोज—राजपूतानेके एक

ग्राममें एक मरणभोज होरहा था. सब जैन लोग जीमने बैठे थे, इतनेमें दैवयोगसे मृतव्यक्तिके दूसरे भाईकी भी आघात पहुंचनेसे मृत्यु होगई, मगर मरणभोजिया पंच लोग निश्चिन्त होकर पत्तलोंपर डटे रहे और लड्डू उड़ाते रहे। यह है मानवताका लीलाम !

९-मृत बालककी लाश पर मरणभोज—मारवाड़ प्रान्तके एक ग्राममें एक ३५ वर्षीय युवककी मृत्यु होगई। उसकी विधवाने मरणभोज करनेकी अशक्ति प्रगट की, मगर पंचलोग कब छोड़नेवाले थे। दो वर्ष बाद भी उस विधवासे मरणभोज कराया गया। इसी बीचमें मरणभोजके दिन हृदयको चीर देनेवाली एक दुःखद घटना घट गई। और वह यह थी कि उक्त विधवाका १२ वर्षका लड़का एकाएक बेहोश होकर जमीनपर गिर पड़ा और देखते ही देखते अनाथिनी माताको अथाह शोकसागरमें डाल अनंत निन्द्रामें मग्न होगया। उस समय उसकी विधवा माताकी क्या दशा हुई होगी सो उसे तो सहृदयी ही समझ सकते हैं। वह बिचारी उस असह्य वेदनाको दबाये माथा कूट रही थी, किन्तु उधर निर्दयता और निर्लज्जताके अवतार मरणभोजिया लोग लड्डू गटक रहे थे। उस समय न शुद्धिका विचार था और न दयाका।

१०-एक भाईके मरणभोजमें दूसरेका मरण—ललितपुरसे कुछ मील दूर जहां गजरथ चल चुके हैं एक ग्राममें एक युवक भाईकी मृत्यु होगई। तेरहवें दिन मरणभोजकी तैयारियां होरही थीं, पुरियां बन चुकी थीं। दूसरी सामग्रीकी तैयारी होरही थी कि अपने युवक भाईकी मृत्युके आघातसे दूसरे युवक भाईकी भी मृत्यु

की। मगर पंच लोग नहीं माने। उनने कहा कि तू घर बेचदे, गहने बेच दे मगर नुक्ता कर, अन्यथा तेरा अब पंचोंसे कोई संबन्ध नहीं रहेगा। वह बिचारी जाति बहिष्कारसे घबराई और मरणभोजकी स्वीकृति दे दी। इतनेमें एक महाशय बीचमें ही कूद कर बोले कि इस पर पहलेका एक नुक्ता उधार है, जब तक यह उसे नहीं करेगी, तब तक यह नुक्ता भी नहीं हो सक्ता, इस लिये दो नुक्ता होना चाहिये। यह खबर विधवाके पास पहुंचाई गई। इसे सुनकर वह सुन्न हो गई, बहरी हो गई और अपना सिर कूटने लगी। मगर पंचलोग नहीं माने। उसका घर और गहने बिकवा कर डबल मरणभोज कराया गया।

यह घटना जिन शास्त्री पण्डितजीने लिख कर भेजी है, वे लिखते हैं कि मैं भी इस मरणभोजके जिमकड़ोंमेंसे एक था। हम लोग जीम रहे थे और सामने ही विधवा बेसुध पड़ी थी। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी अविरल धारा बह रही थी। मगर पाषाणहृदयी पंचोंको उसकी कोई चिन्ता नहीं थी। यह दृश्य मुझसे नहीं देखा गया और उसी दिनसे मैंने मरणभोजमें न जानेकी प्रतिज्ञा करली। वह विधवा बर्बाद होगई, उसकी खबर लेनेवाला आज कोई नहीं है।

१३–शरीरके टुकड़े होजाने पर भी मरणभोज– ग्वालियर राज्यके एक प्रसिद्ध नगरकी घटना है। एक २४ वर्षके युवककी मृत्यु पुटास निकालते समय आग लग जानेसे होगई। शरीरके टुकड़े इधर उधर उड़ गये। २० वर्षकी विधवा और ५५

१७—बच्चे बरबाद होगये—एटा जिलेके एक ग्राममें एक गरीब विधवासे उसके पतिका मरणभोज कराया गया। जिससे वह बर्बाद होगई। बिचारी थोड़े ही दिनोंमें घुल घुलकर मर गई और अपने अनाथ बच्चोंको छोड़ गई जो आज आवारा फिरते हैं। उन बिचारोंकी भी जिन्दगी बर्बाद होगई।

१८—पंचोंको जिमाकर दर दर भटक रही हैं—दमोहसे पं० सुन्दरलालजी जैन वैद्य लिखते हैं कि यहांकी धर्मशालामें एक जैन विधवा आई। उसके साथ तीन छोटी२ लड़कियां थीं। किसीके तनपर एक भी कपड़ा नहीं था। वह स्त्री मात्र एक फटी धोती पहने थी। उसने रोते हुये अपनी कथा सुनाई कि मैं सागर जिलेके ग्रामकी परवार दि० जैन हूं। एक वर्ष पूर्व पतिकी मृत्यु हुई है। पंचोंने चौथे दिन ही मुझसे तेरईका आग्रह किया और कहा कि सिंघईजीके नामके अनुसार अच्छी तेरई करो! मैंने कहा कि मेरे पास एक भी पैसा नहीं है। तब पंचोंने धमकी देकर मेरे जेवर उतरवा लिये और खूब डटकर नुक्ता किया गया। तेरईके बाद ही कर्जवाले (जैन) मेरे ऊपर आटूटे। मुझे अपनी जमीन और मकान देदेना पड़ा। अब मेरे रहने और गुजरका कोई साधन नहीं रहा। तब मैंने पंचोंसे प्रार्थना की। उनने जवाब दिया कि हमने तुम्हारी परवरिशका कोई ठेका तो लिया नहीं और न कोई तेरा देनदार है। तब मैं निराश होकर इस भूखे पेटको और इन भूखी बच्चियोंको लेकर घरसे निकल पड़ी। मैंने बहुत चाहा, मगर न तो मुझसे मरते बनता है और न भ्रष्ट होते ही बनता है। इसलिये अब यहां आई

२१-विधवाको धर्मकार्योंसे भी रोक दिया- विजावर स्टेटके एक ग्राममें एक पण्डितजीका स्वर्गवास हुआ। वे बहुत गरीब थे। उनकी विधवा नुक्ता न कर सकी, इसलिये गांवके और आसपासके जैनोंने उसका तमाम व्यवहार बंद कर दिया। कुछ दिन बाद उसी गांवमें जलयात्रा हुई। किन्तु उस विधवाको मरणभोज न करनेके कारण जलयात्रा-धर्मकार्यमें भी शामिल न होने दिया, आखिर वह गिड़गिड़ाकर बोली कि मेरे पास दो मानी कोदों हैं। इन्हें बेचकर तेरई कर लीजिये। मगर मेरे जीवनका कोई सहारा न रहेगा। यह सुनकर एक पण्डितजीको दया आगई और उनने पंचोंको समझाकर उसे जलयात्रामें शामिल होने दिया।

२२-मरणभोजमें करुणा-क्रन्दन- धर्मात्मा पं० दीपचन्दजी वर्णीने अपना अनुभव लिखा है कि "२५ वर्ष पूर्व मैं अपने संबन्धीके एक नुक्तेमें गया था। २५ वर्षका जवान कमाऊ लड़का मर गया था। उसकी स्त्रीके जेवर बेचकर तेरई कीगई थी। सब लोग जीमने बैठे। मृतकका बुड्ढा बाप और उसके लड़के भी जीमनेको बैठाये गये। सबने एक एक ग्रास उठाया ही था कि बुड्ढा और उसके लड़के बड़े ही जोरोंसे रो उठे। वे रोते रोते कह रहे थे- 'हाय, चना चर गये, मुंजाई लग गई और ऊपरसे दाम भी भर गये! हम तो सब तरहसे लुट गये। कमाऊ लड़का मर गयो, घरको छप्पर मिट गयो। दवाईमें खर्च हो गये सो कछु न लगी पै बहूकी बचोखुचो गानो भी लुट गयो। हाय रे हाय, हम तो सब तरहसे लुट गये !!!

इतनेमें ट्रेनका समय होनेसे बाहरके कुछ आदमी आपहुंचे। बूढ़े पिताने उठकर उनके सामने सिर कूट लिया, छातीमें मुक्का दे मारे, जमीनपर गिर पड़ा। उधर स्त्रियां करुणा-क्रन्दन कर रही थीं। फिर भी पंच लोग लड्डू गटकर रहे थे। मगर मुझसे नहीं खाया गया। और तभीसे मैंने मृत्युभोज त्यागकी प्रतिज्ञा की और कई जगह इस राक्षसी प्रथाको बन्द कराया।

२३—विधवाके गहने बेच डाले—पंडित छोटेलालजी परवार सुपरि० अहमदाबाद बोर्डिंगने लिखा है कि हमारी जातिमें ३० वर्षीय युवककी मृत्यु हुई। उसकी स्थिति बहुत खराब थी। जिस दिन कमाने न जावे उस दिन भूखा रहना पड़ता था। फिर भी जातीय रिवाज और धर्मके कारण जेंवरा करना पड़ा। विधवाके सिरसे पैर तकका गहना (जो चांदीका था) उतारा गया और २५) में बेच दिया गया। उनसे पक्के लाड़ू बनाये गये। सब लोग जीमने बैठे। मैं भी उनमेंसे एक था। उस युवककी बूढ़ी माताको भी बिठाया गया। बहुत मनुहारें कर उसने लाड़ूका एक कौर तोड़ा और बड़े ही जोरसे चीख मारी! उधर युवककी विधवा चिल्ला रही थी जिससे पत्थर भी पिघल जाता। मैं भीतर ही भीतर रो पड़ा। पंच लोग खाना खा रहे थे, मगर मुझसे नहीं खाया गया। वह दृश्य आज भी मेरी आंखोंके सामने घूमता है। एक नहीं, ऐसी अनेक घटनायें होती रहती हैं।

इस प्रकारकी २०–२५ ही नहीं, किन्तु सैकड़ों करुणाजनक घटनायें मेरे पास संग्रहित हैं जो मृत्युभोजका दुष्परिणाम, इसीका

अत्याचार और आपत्तिग्रस्तोंकी बर्बादीको स्पष्ट बताती हैं। फिर भी जो लोग कहते हैं कि मरणभोज करनेमें कोई जबर्दस्ती नहीं करता, यह तो मनका सौदा है, दश पांच आदमियोंको जिमाकर ही रस्म अदा कर लेनी चाहिये, वे समाजको धोखा देते हैं और इस अत्याचारको ढकनेका असफल प्रयत्न करते हैं। उन्हें तथा समाजको आंखें खोलकर देखना चाहिये कि मरणभोजिया लोग कैसी कैसी स्थितिमें मरणभोज कराते हैं। ऐसे मरणभोजोंमें लड्डू उड़ानेको तो नारकी और राक्षस भी तैयार नहीं होंगे, जैसे मरणभोजोंको समाजका बहु भाग उड़ाता है। यदि विशेष खोज की जाय तो इन घटनाओंसे भी भयंकर घटनायें मिल सकती हैं। क्या इन्हें जानकर अब भी जैन समाज इस पापका त्याग नहीं करेगी?

सुप्रसिद्ध विद्वानों और श्रीमानोंके अभिप्राय।

यद्यपि मरणभोजकी अशास्त्रीयता, अनावश्यकता और भयंकरताको हमारे पाठकगण भली भांति समझ गये होंगे, फिर भी मैं मरणभोजके संबन्धमें जैन समाजके कुछ गण्यमान्य विद्वानों और श्रीमानोंके अभिप्राय भी प्रगट कर रहा हूँ। इनसे वस्तुस्थिति कुछ विशेष स्पष्ट हो जायगी। मैंने अपने पिताजीके स्वर्गवासके बाद 'मरणभोज' न करके 'मरणभोज' पुस्तक लिखनेका निश्चय किया और इस प्रथाके संबन्धमें जैन समाजके करीब १०० गण्यमान्य विद्वानों और श्रीमानोंको पत्र भेजे थे, उनमें निम्न लिखित ५ प्रश्न पूछे गये थे:—

१—मरणभोजकी उत्पत्ति कब क्यों और कैसे हुई तथा जैनोंमें

उसका प्रचार करते हैं ? २–क्या मरणभोज करना जैनशास्त्र और जैनाचारकी दृष्टिसे उचित है ? ३–क्या जैन समाजमें मरणभोजका होना अभी भी आवश्यक है और उसे सर्वथा बन्द कर देना इष्ट नहीं है ? ४–आपके यहां जैन समाजमें मरणभोजकी दशा कैसी है ? ५–मरणभोजसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ करुणाजनक घटनायें भी लिखनेकी कृपा करें ।

यह पत्र पुराने और नये विचारके–स्थितिपालक और सुधारक सभी विद्वानों तथा श्रीमानोंके पास भेजे गये थे, किन्तु जो मरणभोजके पक्षपाती हैं, जो मरणभोजमें ही धर्मकी पराकाष्ठा मानते हैं और तमाम धर्म कर्मको मरणभोजमें ही निहित मानते हैं उन पण्डितोंने तो कोई उत्तर देनेका साहस नहीं किया, कारण कि उनके पास मरणभोजको योग्य सिद्ध करनेके लिये न तो कोई शास्त्रीय प्रमाण है और न कोई बुद्धिगम्य तर्क । तथा वे इसका विरोध इसलिये नहीं कर सकते कि उनमें इतना साहस नहीं और न वे अपने पक्षको छोड़ ही सकते हैं, इसलिये उन्होंने किसी प्रकारका भी कोई अनुकूल प्रतिकूल उत्तर नहीं दिया ।

किन्तु जिनमें साहस है, विवेक है, दूरदर्शिता है और जो जमानेकी गति–विधिको जानते हैं उनने मुझे उसका उत्तर दिया, उनमेंसे कुछका आवश्यक भाग यहां प्रगट किया जाता है ।

कुछ विद्वानोंके विचार—

१–पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ–सम्पादक जैनदर्शन तथा जैनबंधु जयपुर लिखते हैं:—मरणभोजकी प्रथा धार्मिक नहीं है ।

ब्राह्मणोंके सहयोगसे यह बुराई हममें आई है। जैन शास्त्रोंसे इस प्रथाका समर्थन नहीं होता। जैनाचारमें इसका कोई स्थान नहीं है। यह आचार नहीं किन्तु रूढ़ि है। मरणभोज करना मिथ्यात्व है। समाजके लिये इसे आवश्यक मानना महा मूर्खता है। जैन धर्मका श्रद्धानी इसे कभी आवश्यक नहीं समझ सकता। जयपुरमें धीरे २ मरणभोज बंद होरहे हैं। कई प्रतिष्ठित लोगोंने भी मरणभोज नहीं किये हैं। मैंने अपनी माताजीका भी मरणभोज नहीं किया। मेरे पास कई निर्दयतापूर्ण घटनाओंका संग्रह है। कई लड्डूखोरोंने असहाय युवती विधवाके शरीरके आभूषणोंसे मृत्युभोज कराकर निर्दयताका परिचय दिया है।

२-**पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार**-अधिष्ठाता वीर सेवामंदिर सरसावा-मरणभोजका इतिहास तो मुझे नहीं मालूम, किंतु जैनोंमें इस प्रथाके प्रचलित होनेका कारण ब्राह्मण धर्मके संस्कारोंका प्राबल्य जान पड़ता है। जैन शास्त्र और जैनाचारकी दृष्टिसे मरण-भोज करना उचित नहीं है। यह हिन्दुओंके श्राद्धका एक रूप या रूपान्तर है। जैन समाजमें इसकी कोई आवश्यक्ता नहीं। और न बंद कर देनेसे किसी अनिष्टकी संभावना ही है। हमारे यहां आज तक मरणभोजकी कोई प्रथा नहीं है। पूर्वजोंने इसे अनुचित और अधर्म मानकर छोड़ दिया है। आपने अपने पिताजीका मरणभोज न करके जो साधु कार्य किया है उसके लिये आप धन्यवादके पात्र हैं।

३-**पं० नन्हेंलालजी जैन सिद्धांतशास्त्री मोरेना**-आपने नुक्ता बंद करके जो साहस किया है वह श्लाघ्य है। आज-कल नुक्ताकी कोई आवश्यक्ता नहीं है।

द्री एवं ब्रह्मचारी आदि गृहत्यागियोंको भोजन कराते हैं। इसे भी प्रायश्चितका एक अंग मानते हैं। इसमें भी कोई पंचायती बन्धन नहीं है। असमर्थ लोग २-४ रुपया खर्च करके मात्र अभिषेक ही करके शुद्ध होजाते हैं। मरणभोज करना आवश्यक नहीं है।

८-पं० सुमेरुचन्द्रजी जैन दिवाकर-शास्त्री, न्यायतीर्थ, बी० ए० एल एल० बी० सिवनी-मैं वर्तमान परिस्थिति तथा अर्थ संकटको देखते हुए इस प्रथामें उचित संशोधन चाहता हूं। हमारे यहां पंचायती तौरपर ४० वर्ष तककी मृत्युकी जीमनवार बन्द है। इससे मैं भी सहमत हूं। यदि व्यक्ति असमर्थ है तो समाजको इसे बाध्य न करके उचित छूट देना चाहिये। वृद्ध भोजके स्थानमें बचा हुआ द्रव्य यदि धार्मिक कार्यमें व्यय किया जाय तो समीचीन बात होगी। हमारे श्रीमानोंको आदर्श उपस्थित करना चाहिये।

९-पं० मुन्नालालजी काव्यतीर्थ इन्दौर-मरणभोज शास्त्रसम्मत हर्गिज नहीं। द्रव्यवानोंको अपना द्रव्य इसके बदले किसी शुभ कार्यमें लगाना श्रेष्ठ है।

१०-पं० किशोरीलालजी शास्त्री-स० सम्पादक जैनगजट पपौरा-मैं मृत्युभोजके विरुद्धमें हूं। मैंने स्वयं अपनी बहूके मरनेपर मृत्युभोज नहीं किया। यह बड़ी दुःखद प्रथा है।

११-दर्शनशास्त्री पं० आनन्दीलालजी न्यायतीर्थ जयपुर-जैन समाजमें मृत्युभोजकी प्रथा बहुत ही भयंकर है। धर्म और जैनाचारसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रथाका शीघ्र ही समूल नाश होना चाहिये।

१५–पं० राजेन्द्रकुमारजी न्यायतीर्थ–महामंत्री दि० जैन संघ अंबालाने जैन युवक परिषद् इटावाके अधिवेशनमें प्रस्ताव रखा था कि "नुक्ताकी प्रथा जैनधर्म एवं जैन शास्त्रोंके प्रतिकूल है, इसलिये किसी भी हालतमें मरणभोज नहीं होना चाहिये।" इस प्रस्तावके विषयमें आपने आध घंटा खूब प्रभावक भाषण भी दिया था और कहा था कि मैंने स्वयं अपने पिताजीकी तेरई नहीं की, पं० परमेष्ठीदासने भी नहीं की, आप लोग भी प्रतिज्ञा करिये। तब उसी समय २०० आदमियोंने मरणभोजका त्याग कर दिया था।

आदर्श त्यागियोंके विचार—

१६–पूज्य बाबा भागीरथजी वर्णी–आपने अपने पिताजीका नुक्ता न करके अच्छा आदर्श उपस्थित किया है। जैनोंमें बहुत समयसे मरणभोजकी प्रथा घुसी हुई है। यह हिन्दुओंके श्राद्धका रूपान्तर है। मरणभोज जैनशास्त्र और जैनाचारकी दृष्टिसे उचित नहीं है। जैन समाजमें मरणभोजका होना आवश्यक नहीं, उसे बंद कर देना ही अच्छा है। खेखड़ामें मैंने इस प्रथाको बंद करा दिया है। यदि खण्डेलवाल, मारवाड़ी और बुन्देलखण्डके जैनी इस प्रथाका नाश कर दें तो समाजका कल्याण होजाय। इन्हींमें इसका विशेष प्रचार है। मरणभोजकी करुणाजनक घटनायें इतनी भयंकर होती रहती हैं कि उन्हें लेखनीसे लिखना अशक्य है।

१७–धर्मरत्न पं० दीपचन्दजी वर्णी–जैनोंमें मरणभोजकी प्रथा कबसे आई सो तो नहीं मालूम, किन्तु यह ब्राह्मणोंका अनुकरण है। इसका प्रचार भट्टारकोंके शिथिलाचारसे हुआ है।

मरणभोज जैन शास्त्र और जैनाचारकी दृष्टिसे सर्वथा विरुद्ध और अनुचित है। इसकेसे लौकिक शुद्धिका भी कोई संबंध नहीं है। जैन समाजमें इसकी कतई आवश्यकता नहीं है। मैंने कई जगह इस प्रथाको बंद कराया है। कुछ मूर्ख तो अपने जीते जी अपना नुक्ता कर जाते हैं और मूढ़ समाज उसमें जीमती है। गुजरातमें कई जगह तो ब्राह्मणोंको बुलाकर रजाई, गद्देला, तकिया, जूता (जोड़ा), अंगरखा, पगड़ी, लोटा, थाली आदि भी देते हैं। यह जैनोंका दयनीय अज्ञान है।

१८-जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी- मैं आपकी दृढ़तापर शाबाशी देता हूं, जो आपने अपने पिताजीकी तेरई नहीं की। जैन शास्त्रोंकी दृष्टिसे तो शुद्धि होनेपर मंदिरमें यथाशक्ति विशेष पूजा व धर्मार्थ तथा करुणाभावसे चार दान करना चाहिये। मरणभोज इसके अन्तर्गत नहीं है और न जैन शास्त्रोंमें इसका विधान है और न यह आवश्यक ही है। इसे सर्वथा बंद कर देना चाहिये। मरणभोजसे बहुतसे घरोंको भी दिवालिया होना पड़ा है।

१९-ब्रह्मचारी प्रेमसागरजी पंचरत्न अन्यमतोंके संसर्गसे जैनोंमें यह ब्राह्मणी प्रथा घुस गई है। मरणभोज जैन शास्त्र और जैनाचारकी दृष्टिसे सर्वथा अनुचित है। न तो यह आवश्यक है और न इसके बंद कर देनेसे कोई हानि ही होगी, प्रत्युत समाजका हित ही होगा। जैन समाजमेंसे इस घातक प्रथाका शीघ्र ही समूल नाश होना चाहिये।

२०-श्वे० मुनिश्री न्यायविजयजी न्यायतीर्थ- [illegible]

और विधवा स्त्री, बुड्ढी माता और कुटुम्बीजन रो रहे हों, और दूसरी ओर पंचलोग माल मलीदा उड़ा रहे हों, यह कैसी निष्ठुरता है। लोग मृत कुटुम्बियोंको शांति देने आते हैं या उन्हें बर्बाद करने ? समाजको चाहिये कि वह असहाय विधवा और दुःखी कुटुम्बियोंके प्रति समवेदना प्रगट करे, उनकी सहायता करे और उन्हें सान्त्वना दे, किन्तु ऐसा न करके उसके घर लोटा भरके पहुंच जाना और लड्डू उड़ाना कहांकी मानवता है ? सचमुच ही मरणभोजकी प्रथा मिथ्यात्वकी जड़मेंसे उत्पन्न हुई है। इसलिये निरर्थक एवं हानिकारक इस प्रथाको उखाड़ कर फेंक देना चाहिये।

कुछ श्रीमानोंके विचार—

२१-रा० भू० रा० ब० दानवीर सेठ हीरालालजी इन्दौर—जैन समाजमें मरणभोज अब आवश्यक नहीं है, कारण कि विधवायें और असमर्थ लोग मरणभोजके कारण ही जेवर बेचकर मकान गिरवी रखकर और कर्ज़ लेकर आगामी जीवनको संकटमय बना लेते हैं। इस आर्थिक संकटके जमानेमें तो समाजकी परिस्थिति इसी प्रथाके कारण कल्पनातीत भयानक होगई है। अतः **इस प्रथाको सर्वथा बंद कर देना ही इष्टकर है।** इन्दौरमें मरणभोजपर सरकारी प्रतिबंध भी है, जिससे १०० आदमियोंका ही नुक्ता होसकता है। किन्तु यह प्रथा धर्मके नामपर रथ यात्राका रूप धारण करती जारही है। मरणभोजसे सम्बन्ध रखनेवाली कई लज्जाजनक घटनायें यहांपर हुई हैं, जिनके फलस्वरूप विधवाओं और असमर्थोंकी दशा बड़ी दयनीय होगई है।

जैनोंमें प्रचार हुआ। जैन दृष्टिसे मरणभोज मिथ्यात्व कहा जासक्ता है। इस तंगीके जमानेमें यह प्रथा जितनी जल्दी बन्द हो उतना ही अच्छा है। हमारी बुढेलवाल जातिमें यह प्रथा प्रायः उठ गई है। करुणकथायें तो रोज देखने सुननेको मिलती हैं।

२६-**भारतके प्रसिद्ध कहानीकार बा० जैनेन्द्र-कुमारजी देहली**-मरणभोजकी उत्पत्तिके विषयमें कुछ नहीं कह सकता। हां, मरणभोज करनेकी बाध्यता हरेक धर्माचारके विरुद्ध है। जैनाचार यदि धर्माचार है तो उसके भी विरुद्ध ही है। मरण-भोजकी प्रथा सर्वथा अनावश्यक है इसे बंद कर देना चाहिये। यहां पर भी कुछ प्रथा है, पर उसकी अनावश्यकता पर जनमत जागता दीखता है।

२७-**श्री० बैरिष्टर जमनाप्रसादजी सब जज**-हिन्दू पड़ोसियोंके असरसे जैनोंमें मरणभोज आया है। यह प्रथा कतई उचित नहीं है। यह अनावश्यक है और इसे सर्वथा बन्द कर देना चाहिये। एक दो घटनायें क्या लिखें, रोज ही घटनापर घटनायें होती हैं। सैकड़ों घर बर्बाद होगये, पर हम क्यों अगुवा बनें, इस भयसे लोग डरते ही चले जाते हैं। आपने अपने पिताजीकी तेरई न करके जो साहस व दूरदर्शिता दिखाई है उसके लिये बधाई!

२८-**ला० तनसुखरायजी**, मंत्री भा० दिगम्बर जैन परिषद् देहली-हर्ष है कि आपने अपने पिताजीका नुक्ता नहीं किया। इस पातक रूढ़िका शीघ्र ही नाश होना चाहिये।

१९-बाबू लालचन्दजी एडवोकेट-तथा पं० रूपसेनजी वकील रोहतक-आपका साहस प्रशंसनीय है। विरोधका मुकाबला दृढ़ताके साथ करें। मरणभोजकी प्रथाका इसी प्रकार विनाश होगा।

२०-मा० उग्रसेनजी मंत्री परिषद् परीक्षाबोर्ड-अब हमारे यहां तो मृत्युभोजको कोई जानता ही नहीं है। जहां इसका रिवाज है वहां भी यह शीघ्र ही मिटना चाहिये। पंच लोग आपकी परीक्षा लेंगे, इसलिये होशयार रहना।

२१-पं० अजितप्रसादजी रूप जज, एडवोकेट लखनऊ-मरणभोजकी प्रथा गरीबोंमें तो जीवित मनुष्योंको यम-राजके दर्शन करा देती है, संसार नरक होजाता है, आत्मघात मुक्ति-स्वरूप मालूम पड़ने लगता है। यह प्रथा घोर पापरूप, अत्यन्त हानिकर और हिंसात्मक है। समाजका मुख्य कर्तव्य है कि इस भयंकर नाशकारी प्रथाको शीघ्र ही बंद कर दे। धार्मिक तत्व तो इस प्रथामें कुछ है ही नहीं।

२२-रायसाहब नेमदासजी शिमला-जैन शास्त्रोंमें मरणभोजका कोई उल्लेख या विधान नहीं पाया जाता। लोकाचारकी दृष्टिसे भी मरणभोज उचित नहीं है। जैन समाजके लिये यह हानिकर प्रथा है। आपने अपने पिताजीका मरणभोज न करके समाजके सामने अच्छा आदर्श उपस्थित किया है।

२३-बा० फतहचन्दजी सेठी अजमेर-यहां मुक्ता करनेकी कोई अवधि निश्चित नहीं है। कई लोग मृत्युके १५-२० वर्ष बाद भी मुक्ता करते हैं। प्रायः यहां समझदार और शिक्षितों

होती हैं, एक तीसरे दिन निकटसंबंधियोंकी जिसमें लप्सी पूड़ी बनती है, दूसरी बारहवें दिन बिरादरीकी, तीसरी तेरहवें दिन ज्योनारें यहां आवश्यक हैं, चाहे मरनेवाला युवक हो या आत्मघात करके ही मरा हो! अविवाहितोंके भोज नहीं होते। लावारिस विधवा जीते जी ही अपना बारहवेंका भोज दे जाती है और लोग खुशीसे जीमते हैं। इस भयंकर एवं अमानुषिक प्रथाका जितने जल्दी नाश हो सो अच्छा है।

३४-**स्व० ज्योतिप्रसादजी देवबन्द**—जो मरणभोजका लोलुपी या समर्थक है उससे अधिक पतित और कौन होगा? जैनोंमें मरणभोजकी उत्पत्तिका उत्तरदायित्व त्रिवर्णाचार जैसे कलंकित ग्रन्थों पर है। इस घृणित प्रथाका जैन धर्मसे क्या सम्बन्ध? यह तो मिथ्यात्व है। जैन समाजके लिये मरणभोज कलंक स्वरूप है। जो इसके पक्षमें हाथ-पांव पीटते हैं वे जैन समाजको पतनकी ओर खींचे जा रहे हैं। हमारे यहां मरणभोजकी प्रथा कतई नहीं है। आपने इस घृणित प्रथाको ठुकराकर साहसका काम किया है।

३५-**बा० दीपचन्दजी संपादक जैन संसार देहली**—मरणभोजकी प्रथा अनावश्यक, अनुचित और मनुष्यताके प्रतिकूल है। इसका सर्वथा बंद होजाना प्रत्येक जातिके लिये हितकर है। आपने पिताजीका मरणभोज न करके अनुकरणीय कार्य किया है।

३६-**स्व० सेठ हीराचन्द नेमचन्दजी दोशी सोलापुर**—मेरे अभिप्रायसे मरणभोज नहीं करना चाहिये। हमारे यहां चि० गुलाबचन्दजीकी बहूका मरण होगया, मगर मरणभोज

गटकनेके लिये जैन समाजको धर्मके नामपर धोखा देकर मिथ्यात्वके गहरे गड्ढेमें ढकेलते हैं और अपने लिये नर्कगतिका बन्ध बांधते हैं। इस नीच प्रथाको शीघ्र ही बन्द कर देना चाहिये। इसमें धनी निर्धन या किसी भी आयुकी कोई शर्त नहीं होनी चाहिये।

४०-कविवर श्री० कल्याणकुमार 'शशि'-आपसे जो नुक्तेकी बात करते हैं वे स्वयं उपहासास्पद बनते हैं। आपसे मरणभोजकी आशा हिंदू मुस्लिम समझौता जैसी है। इस भयंकर प्रथाका समाजसे शीघ्र ही नाश होना चाहिये।

४१-पं० छोटेलालजी परवार-सुपरि० दि० जैन बोर्डिंग अहमदाबाद-मैं इस भयंकर प्रथाका कट्टर विरोधी हूँ। मेरे हृदयपर एक घटनाने भारी चोट लगाई है (जो करुणाजनक सच्ची घटनाओंमें नं० २३ पर मुद्रित है) तभीसे मैंने मरणभोजमें जाना छोड़ दिया है। नुक्ताका वार्तालाप ही मुझे बुरा लगता है।

४२-विद्यारत्न पं० कमलकुमारजी शास्त्री-तथा बा० अमोलकचंदजी खण्डवा-जैनोंमें मरणभोज ब्राह्मणोंके अनुकरणका फल है। जैन शास्त्रोंमें इसका कोई विधि विधान नहीं है। यह प्रथा जैन शास्त्र और जैनाचारके सर्वथा विरुद्ध है। यहां पर यह भयंकर प्रथा अभी भी बुरी तरह जारी है।

४३-ब्र० नन्हेंलालजी-भट्टारकीय जमानेमें ब्राह्मणोंसे यह क्रिया जैनोंमें आगई है। इसका जैनागम या जैनाचारसे कोई संबंध नहीं है। गजपूजन में तो कहीं कहीं जैन लोगोंमें 'श्राद्ध' भी करते हैं। बागड़ प्रान्तमें तो इतना रिवाज है कि यदि किसीकी

यदि १२ दिनमें नुक्ता करनेकी न हो तो पंच लोग जमानत लेकर पगड़ी बांध देते हैं। फिर सुविधा होनेपर नुक्ता करवाते हैं अन्यथा उसे खटका देते हैं। इधर कुछ लोगोंमें 'पिन्ड क्रिया' भी ब्राह्मणसे कराई जाती है। 'गंगास्नान' और 'गोदान' का भी संकल्प किया जाता है। जहां जैन समाजमें इतना मिथ्यात्व घुसा हुआ है वहांकी स्थितिका क्या वर्णन करूं !

४४-सेठ मूलचन्द किसनदासजी कापड़िया- संपादक जैनमित्र तथा दिगम्बर जैन, सूरत-मरणभोज किसी भी अवस्थामें शास्त्रोक्त नहीं है। मरण और भोज यह दो शब्द ही संगत नहीं हैं। मरणभोजकी प्रथा मिथ्यात्वियोंका अनुकरण है। जैनधर्म और जैनाचारसे यह सर्वथा विरुद्ध है। पहले सूरतमें हमारी (बीसा हूमड़) जातिमें मरणके ५-५ जीमनवार जबर्दस्ती देना पड़ते थे। किन्तु अब यह प्रथा यहांसे उठ ही गई है। अब तो ८० वर्षके बुड्ढेका भी मरणभोज नहीं किया जाता। इसी प्रकार अन्य प्रान्तोंमें भी शीघ्र ही बंद होजाना चाहिये। इसके लिये उसमें शामिल न होनेकी और दूसरोंसे प्रतिज्ञा करानेकी आवश्यकता है।

४५-मिश्रीलालजी गंगवाल इन्दौर-मरणभोज कांफ्रेन्सके समय कई प्रकट जैन विद्वानोंकी सम्मतियां मंगाई गई थीं। उनके पढ़नेसे मैं कह सकता हूं कि इस प्रथाका जैन धर्म और जैनाचारसे कोई संबन्ध नहीं है। इस प्रथाका बंद होना आवश्यक है।

४६-पं० सत्यंधरकुमारजी सेठी-जिस प्रकार जैनोंमें देवी देवताओंकी पूजा घुस गई, उसी प्रकार ब्राह्मणोंके संसर्गसे

मरणभोज भी घुस गया। जैन शास्त्रोंमें कहीं भी इस प्रथाका समर्थन नहीं मिलता। जैनसमाजमेंसे इस प्रथाका शीघ्र ही नाश होना चाहिये।

४७-**कस्तूरचन्दजी वैद्य**-मंत्री जैन विधवाश्रम अकोला-जैनधर्म और जैनाचारकी यह विरोधी प्रथा न जाने जैन समाजने क्यों कर अपना ली? हमारे आश्रममें ऐसी अनेक विधवायें हैं जिन्हें अपने पतिका मरणभोज करके बर्बाद होना पड़ा और फिर निराधार होकर मार्गभ्रष्ट होना पड़ा! मगर अभागी जैन समाजकी आंखें ही नहीं खुलतीं।

४८-**आयुर्वेदविशारद पं० सुन्दरलालजी दमोह**-जैनागम और जैनाचारकी दृष्टिसे शुद्धिके लिये भी मरणभोज आवश्यक नहीं है। यह तो मात्र मिथ्यात्व है। इस घातक प्रथाका शीघ्र ही नाश होना चाहिये।

४९-**पं० घासीरामजी जैन बजाज आगरा**-वैदिक धर्मानुयायियोंके प्रभावसे जैनोंमें यह प्रथा घुसी है। जैन धर्म और जैनाचारसे इसका कोई संबंध नहीं है। इस प्रथाने समाजको बेहाल कर दिया है। इसका शीघ्र ही नाश होना चाहिये।

५०-**श्री० शान्तिकुमार ठवली नागपुर**-यह प्रथा धार्मिक नहीं किन्तु सामाजिक कुरूढ़ि है। यह निन्दनीय प्रथा है। इसका शीघ्र ही नामनिशान मिटना चाहिये।

५१-**पं० रामकुमारजी 'स्नातक' न्यायतीर्थ**-मरणभोजकी प्रथा जैनधर्म और समाजके लिये एक भारी कलंक है। इससे समाजका बहुत पतन हुआ है।

प्रकरणमें देख चुके हैं कि थोड़ेसे आन्दोलनसे अच्छी सफलता मिल रही है। इस आन्दोलनको अभी और भी उग्र बनानेकी आवश्यक्ता है।

इसमें संदेह नहीं कि आन्दोलनका प्रभाव धीरे धीरे बढ़ता जाता है। पाठकोंको इस बातका अनुभव होगा कि गत कुछ वर्षोंके आन्दोलनसे जनताके विचारोंमें बहुत परिवर्तन हुआ है। यही कारण है कि कई जगह ४०—४५ वर्षसे कम आयुके मृतव्यक्तियोंके मरण-भोज नहीं किये जाते और कई जगह तो इनकी कतई बंदी होगई है। कितने ही विवेकी लोग अपने जीतेजी ऐसा प्रबंध कर जाते हैं कि मेरे मरनेपर मेरा 'मरणभोज' न किया जाय।

अभी पिरावा नि० श्री० चन्दूलाल वल्द बिहारीलालजी जैनने बाकायदे स्टाम्पपर लिखत की है कि मेरे मरनेपर मेरा मरणभोज न किया जाय। आपके कुछ शब्द यह हैं—"यह रिवाज़ हमारे मज़हब जैनके उसूलके खिलाफ है। मज़हब जैनके मुआफ़िक़ किसीके मर जानेके बाद लोगोंके खिलानेका कोई सवाब नहीं माना गया और न मरनेवालेकी रूहको कोई फायदा पहुंचता है। इसलिये अमोलकचन्द जैन पिरावाको वसियत तहरीर करके रजिस्ट्री करा देता हूं कि मेरे और मेरी औरत सुन्दरबाईके मरनेके बाद हम दोनोंका नुक्ता, छहमाही या वर्षी न की जाय। दोनोंके नुक्तामें जो २५०) खर्च होते उन्हें कायम रखकर उसके सूदका धर्मार्थ उपयोग किया जाय। अगर अमोलकचन्द इसके खिलाफ (नुक्ता) करेगा तो दौलतको बरबादमें लगानेवाला और मेरी रूहको तकलीफ पहुंचानेवाला समझा जायगा।"

इससे पाठक समझ सकेंगे कि ब्र० चान्दमलजीको मरण-भोजसे कितनी घृणा है, और यह आन्दोलनका ही प्रभाव है। इसी प्रकार और भी कई श्रीमानोंने आन्दोलनसे प्रभावित होकर मरणभोज नहीं किया और अच्छी रकम दानमें दी है। अभी हाल ही बाबू शांतिप्रसादजी जैन रोहतास इन्डस्ट्रीजकी माताजीका स्वर्गवास हुआ है। उनने मरणभोजादि न करके ५०००००) पांच लाख रुपयाका आदर्श दान किया है। पूनामें सेठ पोईराम हीराचन्दजी जैनने अपनी माताजीका नुक्ता न करके ५०००) गरीबोंकी सहायताके लिये दान किये हैं। जबलपुरके सुप्रसिद्ध श्रीमान स० सिंघई [illegible] रतनचंदजीका स्वर्गवास होनेपर मरणभोज नहीं किया गया, किन्तु ५००) दान किये गये। झांसीमें सि० गुलाबचंदजी जैनकी माताजी-का स्वर्गवास होगया। उनने मरणभोज न करके यथाशक्ति अच्छा दान किया है। इसी प्रकार और भी अनेक उदाहरण देखे हैं जिनसे ज्ञात होता है कि जनतापर आन्दोलनका अच्छा प्रभाव पड़ रहा है।

आन्दोलनका यह भी प्रभाव हुआ है कि यदि कोई हठपूर्वक मरणभोज करता भी है तो कई लोग उसके यहां जीमने नहीं जाते। हाल ही समाचार आया है कि जोधपुरमें बद्रीदासजी सुराने अपनी माताजीका मरणभोज किया। ५०० लोगोंको आमंत्रण दिया। किन्तु उसमें २५० लोग ही सम्मिलित हुये। इसी प्रकार यदि सर्वत्र बहिष्कार किया जाय तो बहुत अच्छी सफलता मिल सकती है।

कईने अपने पिताजीका मरणभोज नहीं किया। इसके अलावा

आन्दोलन हुआ है। परिणामस्वरूप अन्य कई लोगोंने मरणभोज नहीं किये। जैनमित्र और वीरमें पण्डित गोरेलालजी जैनने समाचार छपाया है कि "सेंधवा नि० पं० मोतीलालजीकी पितामहीका ७५ वर्षकी आयुमें स्वर्गवास होगया। लोगोंके आग्रहसे रिवाजानुसार मरणभोजका विचार हुआ। मगर मैंने बहुत समझाया कि अपने गरीब प्रांत (बुन्देलखण्ड) में यह घातक प्रथा मिटा देनी चाहिये। तब आपने पं० परमेष्ठीदासजीका अनुकरण करते हुये मरणभोज बन्द कर दिया और गोलापूर्व जैन समाजमें इस घातक प्रथाको बन्द करनेका सर्व प्रथम श्रेय आपने ही लिया। अब आप अपनी पितामहीके स्मरणार्थ एक पुस्तक प्रगट करनेवाले हैं।"

जैन समाजके प्रखरसुधारक हरदेनी नि० पन्नालालजी जैन खिरोने अपने एक पत्रमें लिखा है कि "आपके समान ही एक मामला मेरे ऊपर अटक गया था। मेरे पिताजीका ७० वर्षकी आयुमें स्वर्गवास होगया। यहांकी समाज मरणभोजके लिये आग्रह करती रही, मगर मैंने आपके साहस और आदर्शका अनुकरण करके मरणभोज नहीं किया।"

इन घटनाओंके उल्लेख करनेका तात्पर्य यह है कि यदि कोई साहसपूर्वक अपने घरसे सुधार करे तो उसका अनुकरण करनेवाले भी बहुत होजाते हैं। और फिर उनके भी अनुकरण करनेवाले तैयार होजाते हैं। इस प्रकार धीरे धीरे कुरूढ़ियोंका नाश होता जाता है। मरणभोजको बंद करनेके लिये भी स्वयं नमूना बननेकी आवश्यकता है। मरणभोजकी घातक प्रथाको बन्द करनेके लिये प्रत्येक जगहकी

परिस्थितिके अनुसार अनेक उपाय हो सकते हैं। किन्तु मैं यहां पर कुछ सर्वसामान्य उपाय लिख रहा हूं—

१-यदि आप मरणभोजके विरोधी हैं और यदि इस पुस्तकको पढ़नेके बाद कुछ व्यथा उत्पन्न हुई है तो प्रतिज्ञा करिये कि मैं किसी भी मरणभोजमें न तो भोजनार्थ सम्मिलित होऊंगा और न इस कार्यमें किसी भी प्रकारका सहयोग ही दूंगा।

२-यदि आपके घरमें, कुटुम्बियोंमें या रिश्तेदारोंमें मरण भोज होता है तो [illegible] आपसे वह नहीं रुकेगा, किन्तु आप साहसपूर्वक उसका डटकर विरोध करिये, समझाइये और इसलिये भी सफलता न मिलनेपर उसके विरोध स्वरूप उपवास करिये। और उसे सहर्ष प्रगट कर दीजिये।

३-अपनी जातिमें, ग्राममें और आसपासके ग्रामोंमें जाकर सभा मेला, प्रतिष्ठा या रथादिके समय लोगोंमें मरणभोज विरोधी प्रचार करिये। तथा अधिकसे अधिक लोगोंसे मरणभोज विरोधी प्रतिज्ञापत्र भराइये, जो "ला० तनसुखरायजी जैन मंत्री दि० जैन परिषद्—देहली" को पत्र देनेसे [illegible] मुफ्त मिलेंगे।

४-जब आपको मालूम हो कि कहीं मरणभोज होनेवाला है तब आप कुछ प्रभावक लोगोंको साथ लेकर वहां पहुंचिये और उचित मार्ग बताइये। यदि समझानेपर वह न माने तो उसे स्वयं या अपने किसी मददगार लोगोंसे कहलवा दीजिये कि यदि आप मरणभोज करेंगे तो हम डटकर विरोध करेंगे। यदि इसमें भी सफलता न मिले तो मरणभोज विरोधी इश्तहार छपाकर बांटिये

वालोंके घर तथा आम जनतामें बांटना चाहिये तथा उसमें अपना निश्चय प्रगट कर देना चाहिये । फिर भी यदि सफलता न मिले तो अपनी मण्डलीके कुछ साहसी युवकोंको तथा कुछ बहिनोंको लेकर मरणभोज करनेवालेके दरवाजे पर शांत एवं अहिंसापूर्ण पिकेटिंग (धरना) करिये । फिर देखिये कितने निष्ठुरहृदयी आपकी छातीपर पैर रखकर भोजन करने भीतर घुसते हैं ।

श्रीमती लेखवतीजी जैनके शब्दोंमें तो "बहिनोंको भी पिकेटिंग करना चाहिये, फिर भी जिन निष्ठुर पुरुषोंको मरणभोजमें जाना होगा वे भले ही बहिनोंकी छातीपर लात रखकर चले जावें ।"

५—प्रत्येक नगरमें मरणभोज विरोधी दल स्थापित होना चाहिये अथवा प्रत्येक मण्डल, युवकसंघ, विद्यार्थी संघको यह कार्य अपने हाथमें लेना चाहिये । सफलता अवश्य मिलेगी ।

साहसी युवको ! मुझे तुमसे बहुत आशा है । तुम प्रतिज्ञा करो और अपने मित्रोंसे प्रतिज्ञा कराओ कि हम मरणभोजमें किसी प्रकारका भाग नहीं लेंगे । समाजमें मरणभोज जैसी राक्षसी प्रथा चालू रहे और युवक देखा करें यह तो युवकोंके सिर सबसे बड़ा कलंक है । इस कलंकको मिटानेके लिये मरणभोज विरोधी जबर्दस्त आन्दोलन उठाओ । अच्छे कामोंमें सफलता अवश्य मिलती है ।

विवेकशील बहिनो ! तुम तो दया और करुणाकी मूर्ति हो । फिर क्यों इस निर्दयतापूर्ण रूढ़िको पुष्ट कर रही हो ? यदि तुम मरणभोजमें जाना छोड़ दो, उसमें किसी प्रकारका भाग नहीं

लो और उसका डटकर विरोध करो तो निश्चय ही यह प्रथा समाजसे जल्दी ही उठ जाय। तुम देख रही हो कि मरणभोजके कारण तुम्हारी विधवा बहिनोंकी कैसी दुर्दशा होती है। फिर भी तुम इसका विरोध क्यों नहीं करतीं ? तुम्हारी ओरसे तो कोई आन्दोलन ही नहीं दिखाई देता। तुम्हें तो इसके विरोधमें सबसे आगे होना चाहिये। मुझे विश्वास है कि जब तुम इसके विरोधमें अपनी आवाज़ उठाओगी तब मरणभोजका रहना असम्भव होजायगा।

समाजके मुखियाओ ! अब देश और समाजकी परिस्थितिको भी देखो तथा विचार करो कि इस भयंकर प्रथाने अपनी समाजका कैसा नाश किया है। सैकड़ों हजारों घर इसीके कारण बरबाद होगये हैं। इसलिये इस कुप्रथा सर्वथा नाश कर दो। आप तो आजकलके स्वतंत्र वातावरणमें जी रहे हैं, तब फिर इस विनाशक राक्षसी प्रथाको क्यों नहीं मिटा देते ?

सम्माननीय पाठकगण ! इस पुस्तकको पढ़कर यदि आपके मनमें मरणभोज विरोधी विचार उत्पन्न हों तो आप भी कुछ प्रयत्न करिये। ऐसे कार्य तो संगठन और एकतासे ही होसकते हैं। आशा है कि यदि आप लोग सम्मिलित प्रयत्न करेंगे तो अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी। जिस दिन जैन समाजसे मरणभोजका मुँह काला होगा उसी दिन जैन समाजका मुख उज्ज्वल होजायगा।

कविता-संग्रह ।

मरणभोज ।

[र० – श्री० घासीराम जैन " चन्द्र "]

सिसक सिसककर इधर रोरही है विधवा बेचारी ।
उधर बालसमुदाय बिलखता देदेकर किलकारी ॥
नहीं पास है इतना धन जिससे व्यतीत हो जीवन ।
ऐसी कुदशा छोड़ पधारे स्वर्ग लोक जीवनधन ॥
कहो किस तरह विश्वमें जीवनका निस्तार हो ।
कैसे विधवावृन्दका भारतमें उद्धार हो ॥ (१)

अभी तीसरा भी तो पतिका हुवा नहीं है ।
कामकाज निज कर विधवाने छुवा नहीं है ॥
निज प्यारी संतान न अबतक गले लगाई ।
धीरज तनिक न हुवा न कुछ तनकी सुध पाई ॥
नुक्ता करवाने यहां पंचलोग आने लगे ।
माल उड़ानेके लिये जेवर बिकवाने लगे ॥ (२)

विधवा कहती कहो किस तरह जाति जिमाऊँ ।
कर्जा लूं या निज जेवर गिरवी रखवाऊँ ॥
नहीं पास पैसा है जिससे काम चलाऊँ ।
भगवन् ! ऐसे दुखमें कैसे धीरज पाऊँ ॥
सह न सकूंगी तनिक भी मैं उलाहने जातिमें ।
नुक्ता करना ही पड़े सहूं सभी दुख गातमें ॥ (३)

हाय हायकर विविध विध शोक वहां होने लगा।
सारा ही परिवार तब विलख विलख रोने लगा॥ (७)

अरे दुष्ट लोगोंने उसका भी नुक्ता करवाया।
क्रन्दन करती विधवाका कुछ भी तो तरस न आया॥
परवा नहीं द्रव्यकी लाखों मरे हुवे थे घरमें।
पर अनर्थका डंका भारी बजता था जगभरमें॥

कहो कौन रोगा नहीं देख हमारी नीचता।
जिसे देखकर मूर्ख भी सहसा आंखें मींचता॥ (८)

किसी शास्त्रमें नुक्केका सुविधान नहीं है।
नुक्तामें कोई स्वजातिकी शान नहीं है॥
स्वर्ग लोकमें मृत नरक सम्मान नहीं है।
पूर्व-जनोंकी इसमें कोई शान नहीं है॥

फिर क्यों ऐसी कुप्रथा की कीचड़में फंस रहे।
तुम्हें देखकर सभ्यगण "चन्द्र" सभी हैं हंस रहे॥ (९)

अरे भाइयो अब तो युग उन्नतिका आया।
नहीं चलेगा ढोंग यहां अब यह मनभाया॥
मत पथपर आ ऐसी दुष्ट प्रथाएं छोड़ो।
कुटिल कुरीति कुमार्ग सदा इनसे मुख मोड़ो॥

प्राण बचाओ जातिके त्याग दीनता हीनता।
"चन्द्र" न हरगिज इस तरह फैलाओ अति दीनता॥(१०)

नुक्तेकी भेंट !

[रचयिता-कविवर श्री० कल्याणकुमार जैन "शशि"]

सामाजिक अत्याचारोंपर हो रो पानी पानी।
सुन पाठक एक नगरकी है यह करुण कहानी॥
सरल स्वभावी जैनी लाला दीनानाथ बिचारे।
क्रूरकालसे कवलित होकर असमय स्वर्ग सिधारे॥ (१)
अपने पीछे बीस वर्षकी विधवा पत्नी छोड़ी।
मानो इस निर्दयी कालने सुन्दर कली मरोड़ी॥
लाला दीनानाथ बहुत थे साधारण व्यापारी।
खर्च इसलिये होजाती थी कुल कमाई सारी॥ (२)
इस कारण ही अपने पीछे अधिक नहीं धन छोड़ा।
गिरा कर्जमें खर्च होगया जो कुछ भी था थोड़ा॥
विधवा अबला 'राम भरोसे' का रहा न नेक सहारा।
कैसे होगा बेचारीका आगे हाय गुजारा॥ (३)
पर समाजके नायकोंका इसपर ध्यान नहीं था।
मानो पंचायती राजमें इसको स्थान नहीं था॥
यह निर्दयी समाज न समझी किञ्चित् दुख कैसी थी।
बिलख बिलख कर [illegible] दिये बैठी थी (४)
[illegible] हुआ [illegible]।
भोली दुखी बहू कुछ [illegible] हाय हुई असहाया॥
निश्चय एक नया [illegible] आया।
पंचोंने कहा 'नुक्ता' [illegible] (५)

एकाएक नये संकटसे घबरा गई बिचारी ।
नाच गई आंखोंमें आकर नव भविष्यकी ख्वारी ॥
सोचा था कुछ जोड़ गांठ जीवन निर्वाह करूँगी ।
धर्म ध्यान रत जैसे होगा पापी पेट भरूँगी (६)

पर नुक्केके महाशापने सब पर पानी फेरा ।
हाय अधूरी ही निद्रामें असमय हुआ सवेरा ॥
पड़ी और मारतीके ऊपर ये दो लातें ज्यादा ।
कैसे अब रक्खे समाजमें अक्षुण्ण कुल मर्यादा (७)

आखिर सब धन हार गई फिर पंचों पर बेचारी ।
बड़ी दीनता पूर्ण रो रो करके यह अर्ज गुजारी ॥
पंचराज ! मैं हाय लुट गई अशुभ कर्मकी मारी ।
प्राणेश्वर मर गये किन्तु हा मैं न मरी हत्यारी ॥ (८)

जीवन भार सिर पड़ा मेरे इसको ढोने दीजे ।
पर इस 'नुक्के' के कारण मेरी मत ख्वारी कीजे ॥
आप सोचिये कैसे संभव होगा हुक्म बजाना ।
जब कि नहीं है यहां पेट भरनेके लिये ठिकाना ॥ (९)

पंचोंके आगे बहुतेरी विधवा रोई धोई ।
पर बहुड़-खोड़र पापी इनमें न पसीजा कोई ॥
सब कुछ कहा दुहाई भी दी किन्तु न कुछ फल पाया ।
मिष्टान्नाधिकार कहो किसीने मन्दा कभी जब पाया ॥ (१०)

बोले पंच पापिनी हमसे अधिक न बात बनाना ।
यह प्राचीन धर्म है इसको पड़े जरूर निभाना ॥

प्राणाधारसे !

[रच०-पं० राजेन्द्रकुमारजी जैन 'कुमरेश' साहित्यरत्न।]

नाथ आपके साथ उसी दिन, यदि मैं भी मर जाती।
तो मरनेसे अधिक आपदा, यह मुझ पर क्यों आती॥
मैं दुखिया हा यहां रह गई, और साथ है बच्चा।
भटक रहा दाने दानेको, आज तुम्हारा बच्चा॥ १॥

नहीं खबर लेनेवाला है, भूख प्यासकी मेरी।
मैं हूं और लाल है मेरा, फूटी किस्मत मेरी॥
हाय व्यथा अपनी भी तो मैं, नहीं कहीं कह सकती।
रो सकती हूं हाय न मैं पर, रोकर भी रह सकती॥ २॥

पंचोंका आदेश मुझे हा, पूरण करना होगा।
करूं नहीं तो, नहीं ज्ञातिमें, मेरा रहना होगा॥
मरण भोज करना ही होगा, कैसी करूं अरे रे।
छोड़ गये तुम तो प्रीतम पर, पास न कुछ भी मेरे॥ ३॥

बेचूं यह रहनेका घर क्या, या इस तनके गहने।
नहीं किया तो नाथ ताड़ने, मुझे पड़ेंगे सहने॥
यह बच्चा होकर अनाथ हा, भटके मारा मारा।
पर पंचोंका पेट हाय क्या, भर दूं लड्डू द्वारा॥ ४॥

आओ पंचो अरे जीमलो, मैं हूं लाल खड़ा है।
हमें मिटा दो तुमको तो फिर, होगा लाभ बड़ा है॥
मरणभोज हां मरणभोज ही, पंचो अरे करूंगी।
अपना और लाल अपनेका, हां! हां!! हवन करूंगी॥ ५॥

मृत्युभोज निषेध ।

[रच०—पं० शुकदेवप्रसादजी तिवारी विद्याभूषण ।]

कह की कह अब ह्वै गई, समुझि न जाय ।
यह समाज कस ह्वै गई, बुद्धि बिहाय ॥
समदर्शिन यानें, दियो भगाय ।
दूजेके दुखमें सुख, रही मनाय ॥
पंचनकी बुधि झिंगुरन, चरिगे हाय ।
ऐसिन दुरमति फैली, कही न जाय ॥
जाति बीच यदि कोऊ कहुँ मरि जाय ।
तीन दिनोंके पीछे, सब जुरि जांय ॥
मृतक ढोर पै मानहु, गिद्ध उड़ाँय ।
ऐसहि जीभ सँभारें, अरु ललचाँय ॥
देखत नाहिं विपत्ती, दुखियन केर ।
खोयो मानुस घरको, सेवहिं टेर ॥
दया गँवा दई हियसों, भये कठोर ।
निरदई ह्वै के निरनै, दयो चटोर ॥
देवत निरनै, घरकी, दशा भुलाँय ।
दुखी जीव सब घरके, का कछ खाँय ॥
इतने पै, पुरखनकी, कथा सुनाँय ।
ऊँची होय रसुइया, चाउ न जाय ॥
चढ़ा सरग पै सबको, देत गिराय ।
पीछेका फिर ह्वै है, दया न आय ॥

काटत चिठिया लिख लिख, बढ़ो हुलास ।
गिनन लगे दिन पै दिन लग गई आस ॥
फेसिन भई तैयारी, कह्यो न जाय ।
भरि भरिके सब लोटा, बैठिसि आय ॥

करि करिके तारीफें, लगे उड़ान ।
उड़ा उड़ाके चलिगे, होत बिहान ॥
रोवत दुखी कुटुमवा, करत बिलाप ।
कबहुँ न देखत फिरिके, कीन्हेसि पाप ॥

भूखे मरत लड़कवा, घर बिक जाय ।
फेरि न पूछत कोऊ, घर पर आय ॥
मुलुक भोज जो खावत पाप कमाय ।
इतने हू पै धिक है लाज न आय ॥

दुखी कुटुमवें आके, माल उड़ाय ।
मानहु मानस भक्षक, तिन कहँ खाय ।
गीध, स्वान, कौआ अरु, बने शृगाल ।
मुलुक भोजमें आकर, खावत माल ॥

मोहन ! लिख्यो तुम सब, दुख कर जोर ।
कछु इक अर्जी सुनियो, [illegible] मोर ॥
कबहुँ न आकर खावहु, मिलकर भोज ।
कहिन कमाई आकर, खोदहु रोज ॥

दया करहु दुखियन पै, बनो दयाल ।
जासो निज मन सुख पर, रहै खुशहाल ॥

एक दिना जेवनमें, अमर न होय।
मृतक भोज पा बितवत, जीवन कोय ?
करिल्यो आज प्रतिज्ञा "कबहुँ न जाँय।
मृतक भोजके भोजन, कबहुँ न खाँय॥"
'निरबल" की यह विनती, लेवहु मान।
सुख सम्पति सन्तति, पावहु यश मान॥

मरणभोजकी भट्टी।

[रचयिता–कविरत्न पं० गुणभद्र जैन]

लिखदे सत्वर करुण लेखनी मरण कहानी,
सुन जिसको पाषाण हृदय हो पानी पानी;
जबतक यह दुष्प्रथा रहेगी जीवित भूपर,
आवेंगे संकट अनेक हा! अपने ऊपर;
मरणभोजकी अग्निमें, स्वाहा कितने होगये।
पाठक! आप निहारिये, होते हैं कितने नये॥ १॥

बनकर विष यह प्रथा जातिकी नसमें व्यापी,
हुये सभी इसके शिकार सज्जन या पापी;
घरमें मिलता नहीं पेटभर भी हो खाना,
पर पंचोंको तो अवश्य हा! पड़े खिलाना;
निर्धन करती जारही, आज जातिको यह प्रथा।
दिल दहकादे आपका, दुखप्रद है इसकी कथा॥ २॥

घर उजाड़ बन रहे, आज कितनोंके इससे,
अंतरका दुख कहें पासमें जाकर किससे;

मरकर पावक रूप प्रथा यह हमें जलाती,
शल्य तुल्य आजन्म चित्तको नित्य दुखाती;
मरणभोजकी रीतिमें, आग लगा देंगे जभी ।
सुखमें होगी लीन अति, यह समाज सत्वर तभी ॥ ३ ॥

चिर संचित यह द्रव्य धूलमें हाय ! मिलाते,
करके यह ज्योनार कौनसा हम सुख पाते;
है दुख पहले यही गुमाया निज प्रिय जनको;
और गुमाकर उसे गुमाते हैं फिर धनको,
इस शठताकी भी अहो, सीमा क्या होगी कहीं ।
मूरखमें सरताज भी, हमसा होगा ही नहीं ॥ ४ ॥

खिला विविध पकवान्न कौनसा पुण्य कमाते,
देनेसे ज्योनार मृतक जन लौट न आते;
दुख अवसरपर नहीं कार्य यह शोभा पाता,
क्यों करते यह कृत्य ध्यानमें लेश न आता;
आनँद तजकर कुपथके, बनते आज गुलाम हैं ।
इसीलिये संसारमें, हीन हमारे काम हैं ॥ ५ ॥

रोती विधवा कहीं, कहीं भगिनी है रोती,
बैठी जननी कहीं चित्तमें व्याकुल होती;
रोता है हा ! पिता, कहीं भ्राता भी रोता,
रो रो कर शिशु कहीं, दुःखसे भूपर सोता;
पाषाणोंके चित्तमें, ला देता जो नीर है ।
परिजनमें सर्वत्र ही, ऐसा दुख गम्भीर है ॥ ६ ॥

देखें उसे सन्तोष, पेट हम अपना भर कर,
जाते हैं निज सदन, मोदकोंकी बातें कर;
कहलाते हैं मनुज किन्तु, पशुसे हैं क्या कम,
होकरके भी मनुज हुए, जब उन प्रति निर्मम;
दुखप्रद दृश्य विलोकते, करते जो आहार हैं।
उनसे तो उत्तम कहीं, बनके भील गंवार हैं॥ ७॥

होती है ज्यौनार कहीं, घर गिरवी रख कर,
अथवा तनके सकल, भूषणोंका विक्रय कर;
फिर भी नहिं हो द्रव्य पूर्ण तो, चक्की दलकर,
कूट पीसकर, किसी भांति पानी भी भरकर;
करना पड़ता कृत्य यह, पंचोंका 'कर' है कड़ा।
मृतक-भोज ही विश्वमें, धर्म अहो! सबसे बड़ा॥८॥

लख इसके परिणाम दृगोंमें पानी आता,
हा! हा! पत्थर हृदय सहज टुकड़े होजाता;
रो पड़ते निर्जीव द्रव्य भी इनके दुखसे,
कह सकते हम किस प्रकार उस दुखको मुखसे;
हाय! हमारे पापने, हमें बनाया दीन है।
कर पोषण उन्मार्गका, यह समाज अतिहीन है॥

दो भगवन्! सद्बुद्धि शीघ्र हम आप विचारें,
उत्तम पथमें चलें कभी नहिं हिम्मत हारें,
करें कुरूढ़ि विनाश सत्यका जगमें जय हो;
सबका जीवन सदा यहां निर्भय सुखमय हो,
दो शक्ती इस पापकी, सत्वर मूल उखाड़ दें।
फिरसे इस संसारमें, धर्मस्तंभको गाड़ दें॥१०॥